THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_176764
UNIVERSAL LIBRARY

महाभारत के सूक्ति-रत्न

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

सत्साहित्य-प्रकाशन

महाभारत के सूक्ति-रत्न

शान्तिपर्व तथा अनुशासनपर्व के चुने हुए
सुभाषितों का संग्रह

संग्राहक
इन्द्रचन्द्र शास्त्री

१९६३
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली

अढ़ाई रुपये
पहली बार : १९६३
मूल्य : ~~दो रुपये~~

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

प्रकाशकीय

'मण्डल' से सुभाषितों के हम कई संग्रह निकाल चुके हैं। 'सुभाषित-सप्तशती', 'सूक्ति-रत्नावली', 'अमृत की बूंदें', 'संत-वाणी' आदि पुस्तकों को पाठकों ने बहुत पसंद किया है। इनकी मांग बराबर बनी रहती है।

प्रस्तुत पुस्तक उसी श्रृंखला की एक मूल्यवान् कड़ी है। इसमें महाभारत के शान्ति-पर्व तथा अनुशासन-पर्व में से चुने हुए सुभाषित दिये गए है। पाठकों की सुविधा के लिए उन्हें विभिन्न वर्गों में विभाजित कर दिया गया है।

महाभारत वैसे तो सुभाषितों की खान है, लेकिन इस पुस्तक में केवल उन सूक्तियों का संग्रह किया गया है, जो विचार-प्रेरक है, साथ ही चरित्र-निर्माणकारी भी। वैसे इस पुस्तक को जो भी पढ़ेगा, उसीको लाभ होगा, लेकिन नई पीढी के लिए इसकी विशेष उपयोगिता है।

मूल भाषा का पाठक रस ले सके, इसलिए श्लोक भी दिये गए हैं; साथ ही संस्कृत न जाननेवालों के लिए सरल-सुबोध हिन्दी में अर्थ भी।

हमें विश्वास है कि नित्य पठन-पाठन और मनन के लिए इस पुस्तक का सभी क्षेत्रों में स्वागत होगा।

—मंत्री

विषय-सूची

१.	मंगलाचरण	९
२.	आशीर्वाद	१०
३.	सर्वोदय	११
४.	तप की महिमा	१८
५.	पुरुषार्थ की महिमा	२०
६.	श्रेष्ठ मानव	२५
७.	सफलता के अधिकारी व अनधिकारी	३०
८.	दिनचर्या	३६
९.	गुरुजन-सेवा	३८
१०.	पारिवारिक सदाचार	४१
११.	सामाजिक सदाचार	४७
१२.	लोक-व्यवहार	५५
१३.	दानधर्म	६३
१४.	धर्म-निर्णय	७०
१५.	राज-धर्म	७४
१६.	रामराज्य	९८
१७.	अर्थ-नीति	९९
१८.	दण्ड-नीति	१०२
१९.	अध्यात्म	१०६
२०.	प्रकीर्णक	११७

महाभारत
के
सूक्ति-रत्न

मंगलाचरण

नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य धर्मान् वक्ष्यामि शाश्वतान्।।
(शान्तिपर्व, अ० ५६, श्लो० १०)

सर्वमंगल धर्म को नमस्कार है! लोकस्थिति के विधाता कृष्ण को नमस्कार है! तदनन्तर ब्राह्मणों को नमस्कार करके शाश्वत धर्मों का प्रतिपादन करता हू।

यथा तथापि यः पूज्यो यत्र तत्रापि योऽर्चितः।
योऽपि वा सोऽपि वा योऽसौ देवस्तस्मै नमोस्तुते।।

जो किसी भी गुण के कारण पूज्य है, जिसका कहीं भी सम्मान हो रहा है, ऐसा देव जो कोई भी हो, उसे नमस्कार है!

आशीर्वाद

जीवन्तं त्वानुजीवन्तु प्रजाः सर्वाः युधिष्ठिर।
पर्जन्यमिव भूतानि महाद्रुम-मिवाण्डजाः॥
कुबेरमिव यक्षांसि शतक्रतु-मिवामराः।
ज्ञातय-स्त्वानुजीवन्तु सुहृदश्च परंतप॥

(अनुशासनपर्व, अ० ६१, श्लो० ३७-३८)

हे युधिष्ठिर, जिस प्रकार प्राणी वर्षा से तथा पक्षी वृक्ष से जीवन प्राप्त करते हैं, उसी भांति सारी प्रजा तुम्हारे जीवन से जीवन प्राप्त करे!

हे परंतप, जिस प्रकार यक्ष कुबेर के आश्रय पर जीते हैं और देव इंद्र के आश्रय पर, उसी भांति जाति-बन्धु और मित्र तुमसे जीवन प्राप्त करें!

: १ :

सर्वोदय

१

धर्मे वर्धति वर्धन्ति सर्वभूतानि सर्वदा।
तस्मिन् ह्रसति ह्रीयन्ते तस्माद् धर्मं न लोपयेत्॥
(शान्तिपर्व, अ० ९०, श्लो० १७)

धर्म की वृद्धि होने पर सभीकी वृद्धि होती है तथा उसका ह्रास होने पर सबका ह्रास होता है, अतः धर्म का लोप नहीं करना चाहिए।

२

अश्वमेध-सहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेध-सहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥
(अनुशासनपर्व, अ० ७५, श्लो० २९)

एक हज़ार अश्वमेध यज्ञों और सत्य को तुला पर तोला गया तो हज़ार अश्वमेधों की अपेक्षा सत्य को भारी, अर्थात् श्रेष्ठ, पाया गया।

३

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परं तपः।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते॥
(अनु०, अ० ११५, श्लो० २३)

अहिंसा परम धर्म है, और अहिंसा ही परम तप है, अहिंसा ही परम सत्य है; क्योंकि इसीसे धर्म प्रवृत्त होता है।

४

अधृष्यः सर्वभूतानामायुष्मान् नीरुजः सदा।
भवत्यभक्षयन् मांसं दयावान् प्राणिनामिह॥
(अनु०, अ० ११५, श्लो० ४०)

जो व्यक्ति प्राणियों पर दया करके मांस नहीं खाता, वह दीर्घायु, आयुष्मान्, नीरोग तथा अजेय होता है।

५

वृषो हि भगवान् धर्मो यस्तस्य कुरुते ह्यलम्।
वृषलं तं विदुर्देवा-स्तस्माद्धर्मं विवर्धयेत्॥
(शां०, अ० ९०, श्लो० १६)

धर्म को वृष कहा जाता है और जो उसका अन्त कर देता है उसे वृषल। अतः धर्म की वृद्धि करते रहना चाहिए।

६

मृषावादं परिहरेत् कुर्यात् प्रियमयाचितः।
न कामान्न च संरम्भान्न द्वेषाद् धर्ममुत्सृजेत्॥
(शां०, अ० ९३, श्लो० ९)

मिथ्या भाषण न करे, बिना याचना या प्रार्थना किये ही दूसरों का प्रिय करे। किसी कामना, क्रोध तथा द्वेष से प्रेरित होकर भी धर्म का त्याग न करे।

७

न चार्थबद्धः कर्माणि धर्मवान् कश्चिदाचरेत्॥

सच्चा धर्मात्मा अर्थबद्ध होकर, अर्थात् नौकरी के रूप में, कभी धर्माचरण न करे।

८

सुखितोस्मि सुखापन्ने दुखितोस्मि दुःखिते जने।
सर्वस्य प्रिय मित्रं च तेन जीवाम्यनामयः।।

मैं सुखी के साथ सुखी हूं और दुःखी के साथ दुःखी, सभी का मित्र हूं। इस प्रकार निर्मल और नीरोग जीवन व्यतीत करता हूं।

९

यदन्यैर्विहितं नेच्छेत् आत्मनः कर्म पूरुषः।
न तत् परेषु कर्तव्यं जानन्नप्रियमात्मनः।।

(शां०, अ० २५९, श्लो० २०)

मनुष्य दूसरों के द्वारा जिस व्यवहार को अपने लिए पसंद नहीं करता, उस अप्रिय व्यवहार को दूसरों के साथ भी न करे।

१०

अभिमान - कृतं कर्म नैतत् फलवदुच्यते।
त्यागयुक्तं महाराज सर्वमेव महाफलम्।।

(शां०, अ० १२, श्लो० १६)

महाराज, जो कर्म अभिमानपूर्वक, अर्थात् फल की कामना से, किया जाता है वह फलदायी नही होता; किन्तु जो त्याग के साथ किया जाता है वही फलता-फूलता है।

११

उभे प्रज्ञे वेदितव्ये ऋज्वी वक्रा च भारत।
जानन्वक्रां न सेवेत प्रतिबाधेत चागताम्।।

(शां०, अ० १००, श्लो० ५)

हे भारत, मनुष्य को सरल तथा कुटिल दोनों मार्गों का ज्ञान होना चाहिए, किन्तु कुटिल मार्ग का सेवन नहीं करना चाहिए। यदि मन में ऐसा विचार आ जाय तो उसे रोकना चाहिए।

१२

यो हि कालो व्यतिक्रामेत् पुरुषं कालकांक्षिणम्।
दुर्लभः स पुनस्तेन कालः कर्मचिकीर्षुणा।।

(शां०, अ० १०३, श्लो० २१)

जो पुरुष भविष्य की प्रतीक्षा में उपलब्ध अवसर को खो देता है, उसे काम करने की इच्छा होने पर भी, उस अवसर को फिर से प्राप्त करान कठिन होता है।

१३

क्षमा बलमशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा।
क्षमा वशीकृति - र्लोके क्षमया किं न साध्यते।।

क्षमा दुर्बलों का बल है, सबलों का भूषण है। क्षमा वशीकरण है। दुनिया में ऐसी कौन-सी बात है जो क्षमा से सिद्ध नहीं हो सकती !

१४

क्षमा शस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति।
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवो - पशाम्यति।।

जिस व्यक्ति के हाथ में क्षमा-रूपी शस्त्र है, उसका दुर्जन क्या कर सकता है ? बिना घास की भूमि पर पड़ी हुई अग्नि अपने-आप शान्त हो जाती है।

१५

धनं लभेत दानेन मौनेनाज्ञां विशाम्पते।
उपभोगांश्च तपसा ब्रह्मचर्येण जीवितम्।।

(अनु०, अ० ७, श्लो० १४)

हे राजन्, दान के द्वारा धन प्राप्त करना चाहिए, मौन के द्वारा आज्ञा, तप के द्वारा उपभोग तथा ब्रह्मचर्य द्वारा स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन प्राप्त किया जाता है।

१६

रूपमैश्वर्यमारोग्यं अहिंसाफलमश्नुते।
(अनु०, अ० ७, श्लो० १५)

रूप, आरोग्य और स्वास्थ्य---ये अहिसा (प्रेम) के फल हैं।

१७

अहिंसकानि भूतानि दण्डेन विनिहन्ति यः।
आत्मनः सुखमन्विच्छन् स प्रेत्य न सुखी भवेत्॥
(अनु०, अ० ११३, श्लो० ५)

जो मनुष्य अपने सुख की इच्छा रखकर अहिंसक प्राणियों को डंडे से मारता है, वह परलोक में सुखी नही होता है।

१८

आत्मोपमस्तु भूतेषु यो वै भवति पूरुषः।
न्यस्तदण्डो जितक्रोधः स प्रेत्य सुखमेधते॥
(अनु०, अ० ११३, श्लो० ६)

जो मनुष्य सब भूतों को अपने समान समझता है, किसीपर प्रहार नहीं करता है और क्रोध को अपने काबू में रखता है, वह मृत्यु के पश्चात् सुख भोगता है।

१९

न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
एष संक्षेपतो धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते॥
(अनु०, अ० ११३, श्लो० ८)

जो बात अपनेको अच्छी न लगे, वह दूसरों के प्रति भी नहीं करनी चाहिए। यही धर्म का संक्षिप्त लक्षण है। इससे भिन्न जो बर्ताव होता है, वह कामनामूलक है।

२०

प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये।
आत्मौपम्येन पुरुषः प्रमाण - मधिगच्छति।।

(अनु०, अ० ११३, श्लो० ९)

माँगने पर देने और इनकार करने से, सुख और दुःख पहुंचाने से तथा प्रिय और अप्रिय करने से, पुरुष को स्वयं जैसे हर्ष-शोक का अनुभव होता है, उसी प्रकार दूसरों के लिए भी समझे।

२१

यथा परः प्रक्रमते परेषु
तथा परे प्रक्रमन्ते परस्मिन्।
तथैव तेऽस्तूपमा जीवलोके
यथा धर्मो नैपुणेनोपदिष्टः।।

(अनु०, अ० ११३, श्लो० १०)

जैसे एक पुरुष दूसरे पर आक्रमण करता है, उसी प्रकार अवसर आने पर दूसरे भी उसके ऊपर आक्रमण करते हैं। इसी को जगत् में तुम अपने लिए भी दृष्टान्त समझो। अतः किसीपर आक्रमण नहीं करना चाहिए। इस प्रकार यहां कौशलपूर्वक धर्म का उपदेश किया है।

२२

रूपमव्यङ्गता - मायर्बुद्धिं सत्त्वं बलं स्मृतिम्।
प्राप्तुकामैर्नरैर्हिंसा वर्जिता वै महात्मभिः।।

(अनु०, अ० ११५, श्लो० ६)

जो सुन्दर रूप, पूर्णांगता, पूर्ण आयु, उत्तम बुद्धि, सत्व, बल और स्मरण-शक्ति प्राप्त करना चाहते थे, उन महात्मा पुरुषों ने हिंसा का सर्वथा त्याग कर दिया था।

२३

सत्यं वदत मासत्यं सत्यं धर्मः सनातनः।
हरिश्चन्द्रश्चरति वै दिवि सत्येन चन्द्रवत्॥

(अनु०, अ० ११५, श्लो० ६२)

सत्य बोलो, असत्य न बोलो। सत्य ही सनातन धर्म है। राजा हरिश्चन्द्र सत्य के प्रभाव से आकाश में चन्द्रमा के समान विचरते हैं।

२४

सर्वं जिह्मं मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्।
एतावान् ज्ञानविषयः किं प्रलापः करिष्यति॥

(शां०, अ० ७९, श्लो० २१)

समस्त कुटिल व्यवहार मृत्यु का स्थान है, और समस्त सरल व्यवहार ब्रह्म अर्थात् अमरत्व का स्थान है। यही समस्त ज्ञान का विषय है; प्रलाप करने से क्या लाभ!

२५

यदा चायं न बिभेति यदा चास्मान्न बिभ्यति।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म संपद्यते तदा॥

(शां०, अ० २६, श्लो० १४)

जब मनुष्य किसीसे नहीं डरता और न उससे कोई डरता है; जब वह न इच्छा करता है, न द्वेष करता है तब वह ब्रह्म में लीन हो जाता है।

२६

आत्मौपम्येन मन्तव्यं बुद्धिमद्भिः कृतात्मभिः।
मृत्युतो भयमस्तीति विदुषां भूतिमिच्छताम्॥

(अनु०, अ० ११५, श्लो० २०)

अतः जो बुद्धिमान् और पुण्यात्मा हैं, उन्हें चाहिए कि सम्पूर्ण प्राणियों को अपने समान समझें। अपने कल्याण की इच्छा रखनेवाले विद्वानों को भी मृत्यु का भय बना रहता है।

: २ :

तप की महिमा

१

तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः।
आयुःप्रकर्षो भोगाश्च लभ्यंते तपसा विभो॥

(अनु०, अ० ५७, श्लो० ८)

तप से स्वर्ग और यश मिलता है। तप से ही दीर्घ आयुष्य और सांसारिक भोगों की उपलब्धि होती है।

२

ज्ञानं विज्ञानमारोग्यं रूपं सम्पत् तथैव च।
सौभाग्यं चैव तपसा प्राप्यते भरतर्षभ॥

(अनु०, अ० ५७, श्लो० ९)

हे भरतश्रेष्ठ! ज्ञान, विज्ञान, स्वास्थ्य, रूप, संपत्ति और सौभाग्य—सभी-कुछ तप से प्राप्त होता है।

३

अहं दानं प्रशंसामि भवानपि तपःश्रुते।
तपः पवित्रं वेदस्य तपः स्वर्गस्य साधनम्॥

(अनु०, अ० १२२, श्लो० ५)

मैं दान की प्रशंसा करता हूं। तुम भी तपस्या और शास्त्रज्ञान की प्रशंसा करते हो; वास्तव में तपस्या पवित्र एवं वेदाध्ययन और स्वर्ग का उत्तम साधन है।

४

तपसा महदाप्नोति विद्यया चेति नः श्रुतम्।
तपसैव चापनुदेद् यच्चान्यदपि दुष्कृतम्।।

(अनु०, अ० १२२, श्लो० ६)

मैंने सुना है कि तपस्या और विद्या दोनों से ही मनुष्य महान् पद को प्राप्त करता है। अन्यान्य जो पाप है, उन्हें भी वह तपस्या से दूर करता है।

५

यद् यद्धि किंचित् संधाय पुरुषस्तप्यते तपः।
सर्वमेतदवाप्नोति विद्यया चेति नः श्रुतम्।।

(अनु०, अ० १२२, श्लो० ७)

जो कोई भी पुरुष उद्देश्य लेकर तपस्या मे प्रवृत्त होता है, वह सब उसे तप और विद्या से प्राप्त हो जाता है, यह हमारे सुनने में आया है।

६

दुरन्वयं दुष्प्रधर्षं दुरापं दुरतिक्रमम्।
सर्वं वै तपसाभ्येति तपो हि बलवत्तरम्।।

(अनु०, अ० १२२, श्लो० ८)

जिससे सम्बन्ध स्थापित करना अत्यन्त कठिन है, जो दुर्धर्ष, दुर्लभ और दुर्लंघ्य है, वह सव तपस्या से सुलभ होजाता है--क्योंकि तपस्या का बल सबसे बड़ा है।

७

सुरापोऽसम्मतादायी भ्रूणहा गुरुतल्पगः।
तपसा तरते सर्वमेनसश्च प्रमुच्यते।।

(अनु०, अ० १२२, श्लो० ९)

शराबी, चोर, गर्भ-हत्यारा, गुरु की शैया पर शयन करनेवाला पापी भी तपस्या द्वारा सम्पूर्ण संसार से पार हो जाता है और अपने पापों से छुटकारा पा जाता है।

८

अद्भिर्गात्रान्मलमिव तमोऽग्निप्रभया यथा।
दानेन तपसा चैव सर्वपापमपोहति॥

(अनु०, अ० १२२, श्लो० १८)

जिस प्रकार जल से शरीर का मल धुल जाता है और अग्नि से अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार दान और तपस्या से मनुष्य के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

९

धर्मार्थं सञ्चयो यो वै द्रव्याणां पक्षसम्मतः।
तपःसंचय एवेह विशिष्टो द्रव्यसंचयात्॥

(अनु०, अ० ९३, श्लो० ४५)

धन का संचय धर्म के लिए ही किया जाता है, शास्त्रों की यही मान्यता है। धन के संचय की अपेक्षा तप का संचय श्रेष्ठ है।

: ३ :

पुरुषार्थ की महिमा

१

यथा बीजं बिना क्षेत्रमुप्तं भवति निष्फलम्।
तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिध्यति॥

(अनु०, अ० ६, श्लो० ७)

जिस प्रकार बोया हुआ बीज अच्छे खेत के बिना निष्फल हो जाता है, उसी प्रकार पुरुषार्थ के बिना भाग्य निष्फल है।

२

क्षेत्रं पुरुषकारस्तु दैवं बीजमुदाहृतम्।
क्षेत्रबीज - समायोगात्ततः सस्यं समृद्ध्यते॥

(अनु०, अ० ६, श्लो० ८)

पुरुषार्थ खेत है, और भाग्य बीज है। क्षेत्र और बीज के मेल से ही अन्न की वृद्धि होती है।

३

भूमिरेतौ निगिरति सर्पो बिलशयानिव।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्॥

(अनु०, अ० ३६, श्लो० १६)

जिस प्रकार सांप बिल में रहनेवाले जन्तुओं को निगल जाता है, उसी प्रकार जो राजा युद्ध नहीं करता और जो ब्राह्मण यात्रा नहीं करता, उन्हें भूमि निगल जाती है।

४

अथ चेदात्मभाग्येषु नान्येषां सिद्धिमश्नुते।
तस्मात्कर्मैव कर्तव्यं नास्ति सिद्धिरकर्मणः॥

(शां०, अ० १०, श्लो० २६)

दूसरों की सफलता हमारा भाग्य नहीं बन सकती, अतः मनुष्य को स्वयं कर्म करना चाहिए। जो कर्म नहीं करता, उसे सफलता प्राप्त नहीं होती।

५

यथा हि पुरुषः खात्वा कूपमप्राप्य चोदकम्।
पंकदिग्धो निवर्तेत कर्मेदं नस्तथोपमम्॥
यथारुह्य महावृक्षमपहृत्य ततो मधु।
अप्राश्य निधनं गच्छेत् कर्मेदं नस्तथोपमम्॥
(शां० अ० १०, श्लो० ९-१०)

जिस प्रकार कोई पुरुष कुआं खोदे, किन्तु पानी बिना प्राप्त किये ही कीचड़ से सना हुआ बाहर निकल आये, हमारा काम भी ऐसा ही है।

जिस प्रकार कोई मनुष्य ऊंचे वृक्ष पर चढ़कर मधु का संचय करे, पर उसे बिना चखे ही मर जाय, हमारा कार्य भी वैसा ही है।

टिप्पणी—महाभारत का युद्ध समाप्त होने पर जब युधिष्ठिर उदास होकर संन्यासी बनना चाहते थे, तब अर्जुन ने उपर्युक्त दो श्लोक कहे।

६

यस्तु संचरते देशान्यस्तु सेवेत पंडितान्।
तस्य विस्तारिता बुद्धिस्तैलविन्दुरिवाम्भसि॥

जो विभिन्न देशों में घूमता है और पण्डितों की सेवा करता है, उसकी बुद्धि जल में पड़ी तैल की बूंदों के समान व्यापक बन जाती है।

७

न ह्युत्थानमृते दैवं राज्ञामर्थं प्रसाधयेत्।
साधारणं द्वयं ह्येतद्दैवमुत्थानमेव च॥
(शां०, अ० ५६ श्लो० १४-१५)

उत्थान अर्थात् उद्यम के बिना केवल भाग्य राजाओं का अभीष्ट सिद्ध नहीं कर सकता। भाग्य और उद्यम, दोनों, सफलता के समान कारण हैं।

८

उत्थानवीरः पुरुषो वाग्वीरानधितिष्ठति।
उत्थानवीरान् वाग्वीराः रमयन्तः उपासते॥

(शां०, अ० ५८, श्लो० १५)

उत्थान-वीर अर्थात् उठकर काम करनेवाला मनुष्य, वाग्वीरों अर्थात् केवल बातें बनानेवालों पर नियंत्रण करता है। वाग्वीर उत्थान-वीर की खुशामद तथा उपासना मे लगे रहते है।

९

पौरुषं हि परं मन्ये दैवं निश्चित्य मुच्यते।
विपन्ने च समारंभे संतापं मा स्म वै कृथाः॥

(शां०, अ० ५६, श्लो० १५-१६)

मैं पुरुषार्थ को सर्वश्रेष्ठ मानता हूं। प्रयत्न के विफल होने पर, चिन्ता-मुक्त होने के लिए भाग्य का सहारा लिया जाता है। अतः हे राजन्, सन्ताप मत करो!

१०

ईहमानः समारंभान् यदि नासादयेद्धनम्।
उग्रं तपः समारोहेन्नह्यनुप्तं प्ररोहति॥

(शां०, अ० १७७, श्लो० १)

विविध प्रकार से प्रयत्न करने पर भी यदि धन न मिले तो तपस्या करनी चाहिए। बिना बोये फल नहीं मिलता।

११

गृध्रदृष्टिर्बकालीनः श्वचेष्टः सिंहविक्रमः।
अनुद्विग्नः काकशंकी भुजंगचरितं चरेत्॥

(शां०, अ० १४०, श्लो० ६२)

मनुष्य बिना उद्वेग अर्थात् घबराहट के गृद्ध के समान दृष्टि, बगुले के समान ध्यान, कुत्ते के समान तत्परता, सिह के समान पराक्रम तथा कौवे के समान सतर्कता रखे और सांप के समान आचरण करे।

१२

किं तैर्येऽनडुहो नोह्याः किं धेन्वा वाप्यदुग्धया।
वन्ध्यया भार्यया कोऽर्थः कोऽर्थो राज्ञाप्यरक्षता॥
(शां० रा०, अ० ७८, श्लो० ४१)

(वे बैल) किस काम के जो भार नहीं ढो सकते; वह गाय किस काम की जो दूध नहीं देती? वन्ध्या भार्या किस काम की और प्रजा की रक्षा न करनेवाला राजा किस काम का?

१३

यथा दारुमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यथा ह्यनर्थः षण्ढो वा पार्थ क्षेत्रं यथोषरम्॥
एवं विप्रोऽनधीयानो राजा यश्च न रक्षिता।
मेघो न वर्षते यश्च सर्वथा ते निरर्थकाः॥
(शां०, अ० ७८, श्लो० ४२-४३)

जिस प्रकार लकड़ी का हाथी, चमड़े का हरिण, नपुंसक तथा ऊसर खेत व्यर्थ होते हैं, उसी प्रकार अनपढ़ ब्राह्मण, प्रजा की रक्षा न करनेवाला राजा तथा वर्षा न करनेवाला बादल व्यर्थ है।

१४

शुभेन कर्मणा सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा।
कृतं फलति सर्वत्र नाकृतं भुज्यते क्वचित्॥
(अनु०, अ० ६, श्लो० १०)

शुभ कार्य से सुख प्राप्त होता है और अशुभ कर्म से दुःख। सर्वत्र किया हुआ ही फलता है, बिना किये कुछ नहीं मिलता।

अर्थो वा मित्रवर्गो वा ऐश्वर्यं वा कुलान्वितम्।
श्रीश्चापि दुर्लभा भोक्तुं तथैवाकृतकर्मभिः॥
(अनु०, अ० ६, श्लो० १५)

धन, मित्र-वर्ग, ऐश्वर्य, कुल तथा लक्ष्मी—किसी भी वस्तु का बिना शुभ कर्म के उपभोग नहीं किया जा सकता।

१५

क्लीबस्य हि कुतो राज्यं दीर्घसूत्रस्य वा पुनः।
(शां०, अ० ८, श्लो० ५)

जो व्यक्ति साहसहीन है या दीर्घसूत्री है, वह राज्य को नहीं प्राप्त कर सकता।

१६

यत्नवान् भव राजेन्द्र यत्नवान् सुखमेधते॥
(अनु०, अ० १०४, श्लो० १४६)

हे राजेन्द्र, प्रयत्न में लगे रहो! यत्नवान् ही सुख प्राप्त करता है।

:४:

श्रेष्ठ मानव

१

शरण्यः सर्वभूतानां विश्वास्यः सर्वजन्तुषु।
अनुद्वेगकरो लोके न चाप्युद्विजते सदा॥
(अनु०, अ० ११५, श्लो० २८)

जो समस्त प्राणियों को शरण देनेवाला और सबका विश्वासपात्र होता है, वह संसार में न तो दूसरे को उद्वेग में डालता है और न स्वयं ही कभी किसी से उद्विग्न होता है।

२

अपारे यो भवेत्पारमप्लवे यः प्लवो भवेत्।
शूद्रो वा यदि वाप्यन्यः सर्वथा मानमर्हति॥

(शां०, अ० ७८, श्लो० ३८)

जो व्यक्ति अपार संकट के समय पर (रक्षक) बन जाता है, जहां नौका न हो वहां नौका बन जाता है, वह शूद्र हो अथवा कोई भी हो, सर्वथा सम्मान के योग्य है।

३

परश्रिया न तप्यंति ये संतः पुरुषर्षभाः।
सर्वान् देवान् नमस्यंति सर्वधर्माय श्रृण्वते॥

(शां०, अ० ११०, श्लो० १७-१८)

जो दूसरों की संपत्ति से ईर्ष्या नही करते, सभी देवों को नमस्कार करते हैं, सभी धर्मों का आदर करते हैं...

४

ये न मानित्वमिच्छंति मानयंति च ये परान्।
ये क्रोधं संनियच्छंति क्रुद्धान् संशमयंति च॥

(शां०, अ० ११०, श्लो० १९)

जो दूसरों के द्वारा सम्मान की आकांक्षा नहीं करते, किन्तु दूसरों का सम्मान करते हैं, जो अपने क्रोध पर नियंत्रण करते हैं और दूसरों के क्रोध को शांत करते हैं...

५

प्रत्याहुर्नोच्यमाना ये न हिंसंति च हिंसिताः।
प्रयच्छंति न याचंते दुर्गाण्यतितरंति ते॥

(शां०, अ० ११०, श्लो० ४)

जो कठोर बात सुनकर उत्तर नहीं देते, स्वयं पीड़ित होने पर भी दूसरों को पीड़ा नहीं देते, दूसरों को धन प्रदान करते हैं, किंतु मांगना नहीं जानते, वे सभी दुर्गों अर्थात् संकटों—पापों—को पार कर जाते हैं।

६

कालेधुरि च युक्तानां वहतां भारमाहितम्।
सीदतामपि कौन्तेय न कीर्तिरवसीदति॥

(शां०, अ० ७५, श्लो० २६)

जो लोग अवसर आने पर तथा उत्तरदायित्व मिलने पर प्राप्त हुए भार को अन्त तक संभालते है, हे कौन्तेय, स्वयं कष्ट में पड़ने पर भी उनकी कीर्ति मलिन नहीं होती।

७

द्विषंतो नैव हीयन्ते राज्ञो नित्यं हि निघ्नतः।
क्रोधं निहंतुं यो वेद तस्य द्रेष्टा न विद्यते॥

(शां०, अ० ९४, श्लो० ९)

राजा सदा हत्या में लगा रहता है फिर भी शत्रुओं की संख्या कम नहीं होती। जो व्यक्ति क्रोध को शांत करना जानता है, उसका कोई शत्रु नहीं होता।

८

अप्रियं यस्य कुर्वीत भूयस्तस्य प्रियं चरेत्।
न चिरेण प्रियः स स्याद् योऽप्रियः प्रियमाचरेत्॥

(शां०, अ० ९३, श्लो० ८)

जिसका अप्रिय किया हो, पुनः अवसर आने पर जो उसका भी प्रिय करता है, तथा जो व्यक्ति अप्रिय होने पर भी किसीके प्रति प्रिय आचरण करता है, वह शीघ्र ही सबका प्रिय बन जाता है।

९

गुणवान् शीलवान् दान्तो मृदुधर्मो जितेन्द्रियः।
सुदर्शः स्थूललक्ष्यश्च न भ्रश्येत सदा श्रियः॥

(शां०, अ० ५६, श्लो० १९)

जो व्यक्ति गुणवान्, सदाचारी, दान्त, मृदु मार्ग पर चलनेवाला है, वह कभी वैभव एवं संपत्ति से वंचित नहीं होता।

१०

अक्रोधनः सत्यवादी भूताना - मविहिंसकः।
अनसूयोऽविजिह्मश्च शतं वर्षाणि जीवति॥

(अनु०, अ० १०४, श्लो० १४)

जो व्यक्ति क्रोध नहीं करता, सत्य बोलता है, प्राणियों की हिंसा नहीं करता, ईर्ष्या तथा कुटिलता से मुक्त है, वह सौ वर्षों तक जीता है।

११

दातारं संविभक्तारं मार्दवोपगतं शुचिम्।
असंत्यक्त - मनुष्यं च तं जनाः कुर्वते नृपम्॥

(शां०, अ० ९३, श्लो० २७)

जो दातार अर्थात् उदार है, बाँटकर खाता है, कोमल स्वभाववाला है, सदाचारी है तथा जो निज जनों का परित्याग नहीं करता, लोग उसीको राजा (या अपना नेता) बनाते हैं।

१२

यस्तु निःश्रेयसं श्रुत्वा ज्ञानं तत् प्रतिपद्यते।
आत्मनो मतमुत्सृज्य तं लोकोऽनुविधीयते॥

(शां०, अ० ९३, श्लो० २८)

जो व्यक्ति कल्याण की बात सुनकर उसे स्वीकार कर लेता है, और अपने मत का दुराग्रह छोड़ देता है, दुनिया उसके पीछे चलती है।

१३

न जातु कलहेनेच्छेत् नियन्तुमपकारिणः।
बालैरासेवितं ह्येतद् यदमर्षो यदक्षमा॥

(शां०, अ० १०३, श्लो० ७)

जहां तक हो सके, अपकारी को दबाने के लिए झगड़ा न करे। बात-बात में उत्तेजित होना तथा क्रोध करना नासमझी का मार्ग है।

१४

यस्तु सर्वमभिप्रेक्ष्य पूर्वमेवाभिभाषते।
स्मितपूर्वाभिभाषी च तस्य लोकः प्रसीदति॥
(शां०, अ० ८४, श्लो० ६)

जो मनुष्य दूसरे को देखते ही पहले बोलता है और मुस्कराकर बात करता है, लोग उससे प्रसन्न होते हैं।

१५

परापवादं न ब्रूयात् नाप्रियं च कदाचन।
न मन्युः कश्चिदुत्पाद्यः पुरुषेण भवार्थिना॥
(अनु०, अ० १०४, श्लो० १०५)

जो व्यक्ति उन्नति चाहता है उसे किसीकी निंदा नहीं करनी चाहिए, और न किसीका अप्रिय करना चाहिए। ऐसा काम भी नहीं करना चाहिए जिससे दूसरे को क्रोध आ जाये।

१६

नापत्रपेत प्रश्नेषु नाविभाव्यां गिरं सृजेत्।
न त्वरेत न चासूयेत् तथा संग्राह्यते परः॥

प्रश्न पूछा जाने पर कभी संकोच न करे, ऐसी वाणी का उच्चारण न करे जो दूसरों की समझ में न आये। किसी बात में जल्दी न करे और न किसीसे ईर्ष्या करे। इस प्रकार लोक-संग्रह किया जाता है। अर्थात्, दूसरे को अपने अनुकूल बनाया जाता है।

१७

सर्वभूतात्म - भूतस्य सर्वभूतानि पश्यतः।
देवाऽपि मार्गे मुह्यन्ति अपदस्य पदैषिणः॥

(अनु०, अ० ११३, श्लो० ७)

जो सम्पूर्ण भूतों का आत्मा है, अर्थात् सबकी आत्मा को अपनी ही आत्मा समझता है, तथा सब भूतों को समान भाव से देखता है, उस गमनागमन-रहित ज्ञानी की गति का पता लगाते समय देवता भी मोह में पड़ जाते हैं।

१८

सर्वे पूज्याः श्रुतधनास्तथैव च तपस्विनः।
दानप्रदाः सुखं प्रेत्य प्राप्नुवन्तीह च श्रियम्॥

(अनु०, अ० १२२, श्लो० ११)

जो विद्या के धनी और तपस्वी हैं वे सब पूजनीय हैं; तथा दान देने वाले भी इस लोक में धन-सम्पत्ति और परलोक में सुख पाते है।

:५:

सफलता के अधिकारी व अनधिकारी

१

सुखं दुःखान्तमालस्यं दाक्ष्यं दुःखं सुखोदयम्।
भूतिः श्रीर्ह्रीर्धृतिः कीर्तिर्दक्षे वसति नालसे॥

(शां०, अ० २७, श्लो० ३१)

आलस्य ऐसा सुख है, जिसका अन्त दुःख में होता है। दक्षता ऐसा दुःख है जिससे सुख का उदय होता है। ऐश्वर्य, संपत्ति, लज्जा, धैर्य तथा कीर्ति आदि गुण दक्ष मनुष्य में रहते हैं, आलसी में नहीं।

२

न क्लीबो वसुधां भुंक्ते न क्लीबो धनमश्नुते।
न क्लीबस्य गृहे पुत्रा मत्स्याः पंक इवासते।।

(शां०, अ० १४, श्लो० १३)

क्लीब अर्थात् दुर्बल मनवाला व्यक्ति पृथ्वी को नहीं भोग सकता, न वह धन प्राप्त कर सकता है। जिस प्रकार मत्स्य कीचड़ में नही रहते, इसी प्रकार क्लीब के घर पुत्र नहीं पैदा होते--उसकी वंश-वृद्धि नहीं होती।

३

नादातारं भजंत्यर्थाः न क्लीबं नापि निष्क्रियम्।
नाकर्मशीलं नाशूरं तथा नैवातपस्विनम्।।

(अनु०, अ० ६, श्लो० १७)

जो व्यक्ति दानी या उदार नहीं है उसे धन-संपत्ति प्राप्त नहीं होती। इसी प्रकार कायर, निष्क्रिय, अकर्मण्य, साहसहीन और तप से विमुख को भी संपत्तियां प्राप्त नहीं होतीं।

४

नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्
न क्लीबाः नाभिमानिनः।
न च लोकरवाद् भीताः
न च शश्वत्प्रतीक्षिणाः।।

(शां०, अ० १४०, श्लो० २३)

जो आलसी, क्लीब और घमंडी हैं तथा दुनिया की बातों से डरते हैं, अथवा सदा प्रतीक्षा में ही बैठे रहते हैं, संपत्तियां उन्हें प्राप्त नहीं होतीं।

५

अर्थानामननुष्ठाता कामचारी विकत्थनः।
अपि सर्वां महीं लब्ध्वा क्षिप्रमेव विनश्यति॥

(शां०, अ० ९२, श्लो० १०)

जो व्यक्ति निजी संपत्ति का ध्यान नहीं रखता, मनमानी करता है तथा डींगें हाँकता रहता है, वह सारी पृथिवी को प्राप्त कर लेने पर भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

६

वसामि नित्यं सुभगे प्रगल्भे
दक्षे नरे कर्मणि वर्तमाने।
अक्रोधने देवपरे कृतज्ञे
जितेन्द्रिये नित्यमुदीर्ण - सत्त्वे॥
नाकर्मशीले पुरुषे वसामि
न नास्तिके सांकरिके कृतघ्ने।
न भिन्नवृत्ते न नृशंसवर्णे
न चापि चौरे न गुरुष्वसूये॥

(अनु०, अ० ११, श्लो० ६-७)

लक्ष्मी ने उत्तर दिया—

मैं सदा सुन्दर, चतुर, आलस्यहीन, कर्मठ, क्रोध न करनेवाले, ईश्वर में विश्वास रखनेवाले, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, प्रतिभावान्, बुरा आचरण न करने वाले व्यक्तियों में निवास करती हूं। और नास्तिक, वर्णसंकर, कृतघ्न, क्रूर जातिवाले (कसाई आदि), चोर, आचारहीन तथा गुरु से असूया करनेवालों से मैं दूर रहती हूं।

७

ये चाल्पतेजो - बलसत्त्वमानाः
क्लिश्यन्ति कुप्यंति च यत्र तत्र।
न चैव तिष्ठामि तथाविधेषु
न केषु संगुप्त - मनोरथेषु॥
(अनु०, अ० ११, श्लोक ८)

जो व्यक्ति अत्यन्त क्षीण-तेज और निर्बल होते हैं, जहां-तहां कलह करते रहते हैं, क्रोध करते हैं, मन के मनोरथों को छिपाते रहते हैं, उनके पास मैं खड़ी भी नहीं रहती।

८

यश्चात्मनि प्रार्थयते न किंचित्
यश्च स्वभावो - पहतान्तरात्मा।
तेष्वल्प - संतोष - परेषु नित्यं
नरेषु नाहं निवसामि देवि॥
(अनु०, अ० ११, श्लोक ९)

जो अपने-आपको प्रेरित नही करते, स्वभाव से ही जिनकी आत्मा मृतप्राय है, उन थोड़े में ही संतुष्ट हो जानेवाले व्यक्तियों में मै कभी निवास नही करती।

९

प्रकीर्णभाण्डा - मनपेक्षकारिणीं
सदा च भर्तुः प्रतिकूलवादिनीम्।
परस्य वेश्माभिरता - मलज्जां
एवंविधां स्त्रीं परिवर्जयामि॥
(अनु०, अ० ११, श्लोक ११)

जिस स्त्री के घर का सामान अस्तव्यस्त या बिखरा पड़ा रहता है, जो दूसरों का ध्यान नही रखती, सदा पति के प्रतिकूल बोलती है, दूसरों के घर मे अधिक बैठना-उठना पसंद करती है, तथा निर्लज्ज है, ऐसी स्त्री को मैं छोड़ देती हूं।

१०

सत्यासु नित्य - प्रियदर्शनासु
सौभाग्ययुक्तासु गुणान्वितासु।
वसामि नारीषु पतिव्रतासु
कल्याणशीलासु विभूषितासु॥
(अनु०, अ० ११, श्लोक १३)

जो स्त्रियां व्यवहार तथा वाणी में सच्ची हैं, सदा प्रसन्नमुख रहती हैं, सौभाग्य तथा गुणों से अलंकृत है, सुशील हैं तथा साफ-सुथरी रहती हैं, ऐसी स्त्रियों में मैं सदा निवास करती हूं।

११

दानेषु कन्यासु विभूषणेषु
यज्ञेषु मेघेषु च वृष्टिमत्सु।
वसामि फुल्लासु च पद्मिनीषु
नक्षत्र - वीथीषु च शारदीषु॥
(अनु०, अ० ११, श्लोक १४)

दान मे, कन्याओं में, आभूषणों मे, यज्ञों में, बरसनेवाले बादलों में, विकसित कमलिनियों में, शरद् ऋतु की नक्षत्रमाला में मैं निवास करती हूं।

१२

नदीषु हंसस्वन - नादितासु
तपस्वि - सिद्धा - द्विज - सेवितासु।
मत्ते गजे गोवृषभे नरेन्द्रे
सिंहासने सत्पुरुषे च नित्यम्॥

नारायणे त्वेकमना वसामि
तस्मिन् हि धर्मः सुमहान् निविष्टः ।।
(अनु०, अ० ११, श्लोक १६-२०)

हंसों के कल-रव से मुखरित तथा तपस्वी, सिद्धों एवं ब्राह्मणों द्वारा सेवित नारियों में मैं रहती हूं। इसी प्रकार मतवाले हाथी, वृषभ, नरेन्द्र, सिंहासन तथा सत्पुरुष में मै निवास करती हूं। परमात्मा में मैं सदा एक-चित्त से रहती हू, क्योंकि वही महान् धर्मो का अधिष्ठान है।

१३

अप्रामाण्यं च वेदानां शास्त्राणां चाभिलंघनम्।
अव्यवस्था च सर्वत्र तद् वै नाशनमात्मनः ।।
(शां० अ० ७९, श्लोक १९; अनु० अ० ३७, श्लोक ११)

वेदों को प्रमाण न मानना, शास्त्रों की आज्ञा का उल्लंघन करना, तथा सभी कार्यों में अव्यवस्था—ये तीन बातें आत्म-विनाश की हैं।

१४

दानेन भोगी भवति मेधावी वृद्धसेवया।
अहिंसया च दीर्घायुरिति प्राहुः मनीषिणः ।।
(अनु०, अ० १६३, श्लोक १२)

मनीषियों का कहना है कि उदारता से भोग प्राप्त होता है, वृद्धों की सेवा से लोग मेधावी बनते हैं और अहिसा से दीर्घ आयु प्राप्त होती है।

१५

तस्माद् दद्यान्न याचेत पूजयेद्धार्मिकानपि ।।

अतः देने की—त्याग करने की—भावना रखनी चाहिए, मांगने की नहीं; तथा धार्मिक लोगों की पूजा करनी चाहिए।

१६

किं छिद्रं कोनुसंगो मे, किं वास्त्यविनिपातितम्।
कुतो मामाश्रयेद् दोष इति नित्यं विचिन्तयेत्॥

(शां०, अ० ८९, श्लोक १४)

मुझमें कौन-सी दुर्बलता है, कहां आसक्ति है, और कौन-सी बुराई है जो अबतक दूर नहीं हुई है और किस कारण से मुझ पर दोष आता है— इन सब बातों का मनुष्य को सदा विचार करते रहना चाहिए।

१७

धनंजय - कृतं पापं कल्याणे नोपहन्यते।
ख्यापनेनानुतापेन दानेन तपसाऽपि वा॥

हे अर्जुन, जिस प्रकार पूर्वसंचित पाप अच्छे कर्म करने से नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार पश्चात्ताप करने, दान देने तथा तप करने से भी वह नष्ट होता है।

: ६ :

दिनचर्या

१

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
उत्थायाचम्य तिष्ठेत पूर्वां सन्ध्यां कृतांजलिः॥
एवमेवापरां सन्ध्यां समुपासीत वाग्यतः।
ऋषयो नित्यसंध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुवन्॥

(अनु०, अ० १०४, श्लोक १६-१८)

प्रातः ब्राह्ममुहूर्त में उठे, और धर्म अर्थात् अपने कर्तव्य और अर्थ अर्थात् अपने हानि-लाभ का चिन्तन करे। उठकर आचमन करे, पूर्व की ओर मुख करके हाथ जोड़कर प्रातःकालीन सन्ध्योपासना करे। इसी प्रकार मौन रहकर सायंकालीन सन्ध्योपासना करे। ऋषियों ने नित्य सन्ध्योपासना द्वारा दीर्घ जीवन प्राप्त किया।

२

मातापितरमुत्थाय पूर्वमेवाभिवादयेत्।
आचार्यमथवाप्यन्यं तथायुर्विंदते महत्॥

उठकर सर्वप्रथम माता-पिता, आचार्य तथा अन्य गुरुजनों का अभिवादन करे, इससे दीर्घ जीवन मिलता है।

३

दैवं पूर्वाह्णिकं कुर्यादपराह्णे तु पैतृकम्।
मनुष्याणां तु मध्याह्ने प्रदद्यादुपपत्तिभिः॥

(अनु०, अ० २३, श्लोक २)

पूर्वाह्ण, अर्थात् प्रातःकाल, देव-सम्बन्धी कार्य करना चाहिए और अपराह्ण, अर्थात् सायंकाल, पितृ-सम्बन्धी कार्य करना चाहिए। मध्याह्न में आदरपूर्वक मनुष्यों को दान दे।

४

नित्यस्नायी भवेद् दक्षः संध्ये तु द्वे जपन् द्विजः।
मरुं साधयतो राजन् नाकपृष्ठमनाशके॥

(अनु०, अ० ५७, श्लोक १४)

जो व्यक्ति नित्य स्नान करता है, दोनों सन्ध्याओं की उपासना करता है तथा जो निर्जल रहकर उपवास करता है, वह स्वर्ग प्राप्त करता है।

५

अनायुष्यं दिवास्वप्नं तथाभ्युदितशायिता।

(अनु०, अ० १०४, श्लोक १३८)

दिन में सोने से आयु घटती है, इसी प्रकार सूर्योदय के पश्चात् सोना भी अनायुष्य है।

६

प्राणी वा यदि वाऽप्राणी संस्कारं यजुषार्हति।
न दिवा प्रस्वपेज्जातु न पूर्वापररात्रिषु॥

(शां०, अ० २४३, श्लोक ६)

सजीव या निर्जीव सभी पदार्थ यज्ञ के द्वारा संस्कार प्राप्त करते हैं। दिन में तथा रात्रि के प्रथम एवं अन्तिम प्रहर में नहीं सोना चाहिए।

: ७ :

गुरुजन-सेवा

१

कर्मातिशेषेण गुरावध्येतव्यं बुभूषता।
दक्षिणोऽनपवादी स्यात् आहूतो गुरुमाश्रयेत्॥

(शां०, अ० २४२, श्लोक १९)

जो शिष्य उन्नति चाहता है, उसे गुरु का सब काम करने के पश्चात् शेष समय में अध्ययन करना चाहिए; वह कभी गुरु की निन्दा न करे और बुलाया जाने पर ही उनके पास जाय।

२

येन प्रीणाति पितरं तेन प्रीतः प्रजापतिः।
प्रीणाति मातरं येन पृथिवी तेन पूजिता॥
येन प्रीणात्युपाध्यायं तेन स्याद् ब्रह्म पूजितम्।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः॥

(अनु०, अ० ७, श्लोक २५)

जिसने पिता को सन्तुष्ट कर लिया, उसने प्रजापति को सन्तुष्ट कर लिया। जिसने माता को प्रसन्न कर लिया, उसने सारी पृथ्वी की पूजा कर ली। और जिसने गुरु की प्रसन्नता प्राप्त कर ली, उसने परमब्रह्म की पूजा कर ली। जो व्यक्ति इनका सम्मान नहीं करता, उसकी सभी क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं।

३

एत एव त्रयो लोका एत एवाश्रमास्त्रयः।
एत एव त्रयो वेदाः एत एव त्रयोऽग्नयः॥

(शां०, अ० १०८, श्लोक ६)

वे (माता, पिता और गुरु) ही तीनों लोक हैं, वे ही तीनों आश्रम हैं, वे ही तीनों वेद हैं और वे ही तीनों अग्नियां हैं।

४

मातापित्रोर्गुरूणां च पूजा बहुमता मम।
यच्च तेऽभ्यनुजानीयुः कर्म तात सुपूजिताः।
धर्म्यं धर्मविरुद्धं वा तत्कर्तव्यं युधिष्ठिर॥

(शां०, अ० १०८, श्लोक ३-४)

माता, पिता और गुरुजनों की पूजा को मैं सर्वोत्कृष्ट मानता हूं। सुपूजित होकर वे जिस कार्य की अनुमति दें, हे युधिष्ठिर, वह धर्म के अनुकूल हो या प्रतिकूल, करना ही चाहिए।

५

गुरुणा चैव निर्बन्धो न कर्त्तव्यः कदाचन।
अनुमान्यः प्रसाद्यश्च गुरुः क्रुद्धो युधिष्ठिर॥
(अनु०, अ० १०४, श्लोक ८०)

हे युधिष्ठिर, गुरु के साथ कभी अड़ना नहीं चाहिए। यदि गुरु क्रुद्ध हो जायं तो उन्हे नम्रतापूर्वक मनाना चाहिए तथा प्रसन्न करना चाहिए।

६

श्रोत्रियान् ब्राह्मणान् वृद्धान् नित्यमेवाभिपूजयेत्।
सांत्वेन भोगदानेन नमस्कारैस्तथार्चयेत्॥
(अनु०, अ० ३३, श्लोक ४)

एतत्कृत्यतमं राज्ञो नित्यमेवोपलक्षयेत्।
यथात्मानं यथा पुत्रांस्तथैतान् प्रतिपालयेत्॥
(अनु०, अ० ३३, श्लोक ५)

श्रोत्रिय ब्राह्मण तथा वृद्धों की नित्य पूजा करनी चाहिए। नम्र वचन, भोग्य वस्तुओं का दान एवं नमस्कार के द्वारा उनका सत्कार करना चाहिए।

राजा जिस प्रकार अपना तथा पुत्रों का पालन करता है, उसी प्रकार इनका भी पालन-पोषण करे। राजा इसे अपना सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य समझे।

७

तेषु शान्तेषु तद्राष्ट्रं सर्वमेव विराजते।
निःशेषं कुपिताः कुर्युरुग्राः सत्यपराक्रमाः॥
(अनु०, अ० ३३, श्लोक ६)

अदैवं दैवतं कुर्युः दैवतं चाप्यदैवतम्।
यमिच्छेयुः स राजा स्यात् यो नेष्टः स पराभवेत्॥

(अनु०, अ० ३३, श्लोक १७)

उनके शान्त रहने पर सारा राष्ट्र शोभा देता है। यदि वे कुपित तथा उत्तेजित हो जाते हैं तो समस्त राष्ट्र का नाश कर देते है। उनमें सच्ची शक्ति होती है।

वे निर्बल को शक्तिशाली बना देते हैं और शक्तिशाली को निर्बल। वे जिसको चाहते हैं वह राजा बन जाता है तथा जिसको नहीं चाहते, वह हार जाता है।

: ८ :

पारिवारिक सदाचार

१

आश्रमांस्तुलया सर्वान् धृतानाहुर्मनीषिणः।
एकतश्च त्रयो राजन् गृहस्थाश्रम एकतः॥

(शां०, अ० १२, श्लोक १२)

मनीषियों ने सभी आश्रमों को तुला पर तौलकर देखा तो एक ओर अकेला गृहस्थाश्रम था और दूसरी ओर शेष तीनों आश्रम।

२

भृत्यातिथिषु यो भुंक्ते भुक्तवत्सु नरः सदा।
अमृतं केवलं भुंक्ते इति विद्धि युधिष्ठिर॥

हे युधिष्ठिर, जो मनुष्य भृत्य और अतिथियों के भोजन कर लेने पर स्वयं भोजन करता है, वह अमृत का भोजन करता है।

३

विघसाशी भवेन्नित्यं नित्यं चामृतभोजनः।
विघसं भृत्यशेषं तु यज्ञशेषमथामृतम्॥
(शां०, अ० २४३, श्लोक १२)

गृहस्थ को नित्य विघस और अमृत का भोजन करना चाहिए। नौकरों के भोजन कर लेने के बाद जो शेष रहता है उसे विघस कहते हैं, और जो यज्ञोपरान्त शेष रहता है उसे अमृत कहते है।

४

चक्षुर्दद्यान्मनो दद्यात् वाचं दद्याच्च सूनृताम्।
अनुव्रजेदुपासीत स यज्ञः पंचदक्षिणः॥
(अनु०, अ० ७, श्लोक ६)

अतिथि के लिए किये जाने वाले यज्ञ में पांच प्रकार की दक्षिणा होती है। चक्षु का दान करे, अर्थात् स्नेहपूर्ण दृष्टि से उसे देखे; मन का दान करे तथा मधु-स्वर्ण का दान करे। उसे छोड़ने के लिए कुछ दूर साथ में जाय तथा उसके पास बैठे।

५

स्त्रियस्तु मानमर्हन्ति तामानयत मानवाः।
स्त्रीप्रत्ययो हि वै धर्मो रतिभोगाश्च केवलाः॥
(अनु०, अ० ४६, श्लोक ९)

स्त्रियां पूजनीय होती हैं। हे मनुष्यो, उनका सन्मान करो! धर्माचरण स्त्री पर निर्भर है, इसी प्रकार रति और भोग भी स्त्री पर निर्भर हैं।

६

श्रिय एता स्त्रियो नाम सत्कार्या भूतिमिच्छता।
पालिता निगृहीताश्च श्री स्त्री भवति भारत॥

(अनु०, अ० ४६, श्लोक १५)

स्त्रिया ही श्री अर्थात् लक्ष्मी है। ऐश्वर्य चाहनेवाले मनुष्य को चाहिए कि उनका सत्कार करे। हे भारत, सम्यक्-रूप से पालित तथा संरक्षित स्त्री ही श्री बन जाती है।

७

पितृभिर्भ्रातृभिश्चापि श्वशुरैरथ देवरैः।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥
स्त्रियो यत्र हि पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

(अनु०, अ० ४६, श्लोक ३)

अपूजिताश्च यत्रैताः सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

(अनु०, अ० ४६, श्लोक ५)

कल्याण की इच्छा रखनेवाले पिता, भाई, श्वशुर तथा देवरों को स्त्रियों का सत्कार करना चाहिए। उन्हें वस्त्र तथा आभूषण देने चाहिए।

जिस घर में स्त्रियो की पूजा होती है वहां देवता निवास करते है। जहां उनका सन्मान नही होता, वहां सारी क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं।

८

जामीशप्तानि गेहानि निकृत्तानीव कृत्यया।
नैव भान्ति न वर्धते श्रिया हीनानि पार्थिव॥

(अनु०, अ० ४६, श्लोक ७)

जिन कुटुम्बों को स्त्रियां अभिशाप दे देती है, वे न बढ़ते हैं, न शोभा देते हैं, मानों धुरी से काट दिये गए हों।

९

निकृतस्य नरैरन्यै र्ज्ञातिरेव परायणम्।
नान्यैर्निकारं सहते ज्ञातिर्ज्ञातिः कथंचन॥

(शां०, अ० ८०, श्लोक ३५)

दूसरों के द्वारा अपमानित होने पर व्यक्ति का जाति-बन्धु ही एकमात्र सहारा है। जातिवाले अपने जाति-बन्धु का तिरस्कार नही सह सकते।

१०

भ्राता ज्येष्ठः समः पित्रा भार्या पुत्रः स्वका तनुः।
छाया स्वा दासवर्गश्च दुहिता कृपणं परम्॥

(शां०, अ० २४३, श्लोक २०)

बड़ा भाई पिता के समान है, पत्नी और पुत्र अपना ही शरीर है। दासवर्ग अपनी ही छाया है, तथा पुत्री तो और भी अधिक दयनीय है।

११

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यै र्मातुलातिथिसंश्रितैः।
वृद्धबालातुरैर्वैद्यै र्ज्ञातिसंबंधिबांधवैः॥

(शां०, अ० २४३, श्लोक १४)

१२

मातापितृभ्यां जामीभिः भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत्॥

(शान्ति०, अ० २४३, श्लोक १५)

याजक, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, आश्रित जन, वृद्ध, बालक, रोगी, वैद्य, जाति-बन्धु और रिश्तेदारो, यथा—

माता-पिता तथा परिवार की स्त्रियां भाई, पुत्र, पत्नी, पुत्री तथा दास-वर्ग के साथ विवाद नही करना चाहिए।

१३

न चेर्ष्या स्त्रीषु कर्तव्या रक्ष्या दाराश्च सर्वशः।
अनायुष्या भवेदीर्ष्या तस्मादीर्ष्यां विवर्जयेत्॥

(अनु०, अ० १०४, श्लोक १३७)

स्त्रियों के प्रति ईर्ष्या न करे, उनकी सभी प्रकार रक्षा करनी चाहिए। ईर्ष्या आयु को घटाती है, अतः उसे छोड़ देना चाहिए।

१४

सर्वानर्थः कुले यत्र जायते पापपूरुषः।
अकीर्तिं जनयत्येव कीर्तिमन्तर्दधाति च॥

(अनु०, अ० १०५, श्लोक ९)

जिस कुल में पापी पुरुष उत्पन्न होता है वहां सभी अनर्थ खड़े हो जाते हैं। ऐसा पुरुष सुकीर्ति को ढक देता है और अपकीर्ति को जन्म देता है।

१५

अथ यो विनिकुर्वीत ज्येष्ठो भ्राता यवीयसः।
अज्येष्ठः स्यादभागश्च नियम्यो राजभिश्च सः॥

(अनु०, अ० १०५, श्लोक ७)

जो बड़ा भाई छोटे भाइयों को दबाता है वह अपने ज्येष्ठ पद से गिर जाता है। पैतृक सम्पत्ति में उसका भाग नहीं रहता और वह राजदण्ड का पात्र है।

१६

सर्वे चापि विकर्मस्था भागं नार्हन्ति सोदराः।
नाप्रदाय कनिष्ठेभ्यो ज्येष्ठः कुर्वीत यौतकम्॥

(अनु०, अ० १०५, श्लोक १०)

यदि छोटे भाई भी पापकर्म में लगे हों, तो वे पैतृक धन में भाग प्राप्त करने के अधिकारी नही है। छोटे भाइयों को उनका उचित भाग दिये बिना बड़े भाई को पैतृक सम्पत्ति में अपना भाग ग्रहण न करना चाहिए।

१७

भ्रातॄणामविभक्तानामुत्थानमपि चेत् सह।
न पुत्रभागं विषमं पिता दद्यात् कदाचन॥

(अनु०, अ० १०५, श्लोक १२)

यदि भाइयों ने सम्मिलित परिवार में रहते हुए एक साथ मिलकर पुरुषार्थ किया हो तो पिता को चाहिए कि बटवारे के समय किसी प्रकार की विषमता न करे।

१८

यो भर्ता वासितातुष्टो भर्तुस्तुष्टा च वासिता।
यस्मिन्नेव कुले सर्वं कल्याणं तत्र वर्तते॥

(अनु०, अ० १२२, श्लोक १७)

जिस कुल में पति अपनी पत्नी से और पत्नी अपने पति से संतुष्ट रहती हो, वहां सदा कल्याण होता है।

१९

गवां फलं तीर्थफलं यज्ञानां चैव यत्फलम्।
एतद् फलमवाप्नोति यो नरोऽतिथिपूजकः॥

(अनु०, अ० १२५, श्लोक १५)

जो मानव अतिथियों की पूजा करता है, वह गोदान, तीर्थस्नान और यज्ञानुष्ठान का फल पा लेता है।

: ९ :

सामाजिक सदाचार

१

दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत्।
त्रसन्ति यस्माद् भूतानि तथा परिभवन्ति च॥

(अनु०, अ० १०४, श्लोक ७)

दुराचारी व्यक्ति, जिससे प्राणी डरते है तथा जिसका सभी अनादर करते है, वह कभी दीर्घायु नहीं होता।

२

तस्मात् कुर्यादिहाचारं यदीच्छेद् भूतिमात्मनः।
अपि पापशरीरस्य आचारो हन्त्यलक्षणम्॥

(अनु०, अ० १०४, श्लोक ८)

यदि आत्मा को पवित्र करना हो तो सदाचार का पालन करना चाहिए। सदाचार से पापात्मा के सभी कुलक्षण दूर हो जाते हैं।

३

नासत्यवादिनो सख्यं न पुण्यं न यशो भुवि।
दृश्यते नापि कल्याणं कालकूटमिवाश्नतः॥

जो व्यक्ति असत्य बोलता है उसका न कोई मित्र बनता है, न उसे पुण्य मिलता है, न यश प्राप्त होता है। कालकूट विष को पीनेवाले के समान उसका कभी कल्याण नहीं होता।

४

विनश्यमानं धर्मं हि योऽभिरक्षेत् स धर्मवित्।
न तेन धर्महा स स्यान्मन्युस्तं मन्युमृच्छति॥
(शां०, अ० ५६, श्लोक ३०)

जो व्यक्ति नष्ट होते हुए धर्म की रक्षा करता है, अपराधी को दण्ड देने पर भी वह धर्म-घाती नहीं होता। वास्तव मे देखा जाय तो अपराधी को उसका अपराध ही दण्डित करता है।

५

पंथा देयो ब्राह्मणाय गोभ्यो राजभ्य एव च।
वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्यै दुर्बलाय च॥
(अनु०, अ० १०४, श्लोक २५)

ब्राह्मण, गौ, राजा, वृद्ध, भाराक्रान्त, गर्भिणी और दुर्बल सामने आ रहे हों तो उनके लिए मार्ग छोड़ देना चाहिए।

६

हीनांगानतिरिक्तांगान् विद्याहीनान् विगर्हितान्।
रूपद्रविणहीनाँश्च सत्यहीनाँश्च नाक्षिपेत्॥
(अनु०, अ० १०४, श्लोक ३५)

जो व्यक्ति हीन अंगोंवाला, अधिक अंगोंवाला, विद्याहीन, विगर्हित, कुरूप, दरिद्र या झूठा हो, उसपर आक्षेप नहीं करने चाहिए।

७

यो हि खादति मांसानि प्राणिनां जीवितैषिणाम्।
हतानां वा मृतानां वा यथा हन्ता तथैव सः॥

(अनु०, अ० ११५, श्लोक ३७)

जो व्यक्ति जीवन की इच्छा रखनेवाले प्राणियों का (चाहे वे जीवित हों या मरे हुए) मांस खाता है, उसे उतना ही पाप लगता है जितना मारने वाले को।

८

लंघितं चावलीढं च कलिपूर्वं च यत्कृतम्।
केशकीटावपतितं क्षुतं श्वभिरवेक्षितम्॥
निरोङ्कारेण यद्भुक्तं सशस्त्रेण च भारत।
परोच्छिष्टं च यद्भुक्तं परिभुक्तं च यद्भवेत्।
रुदितं चावधूतं च भागं तं रक्षसां विदुः॥

(अनु०, अ० २३, श्लोक ४-७)

जिस अन्न को कोई लांघ गया हो या जिसपर छिपकली आदि घूम गई हो, जो द्वेष एवं कलहपूर्वक तैयार किया गया हो, जिसमें केश या कीड़े पड़ गए हों, किसीने थूक दिया हो, कुत्तों की दृष्टि पड़ गई हो; इसी प्रकार हे भारत, जो भोजन ओ३म् का उच्चारण किये बिना या हाथ में शस्त्र लेकर खाया जाता है, जो उच्छिष्ट है या दूसरे के द्वारा खाया जा चुका है; इसी प्रकार जो रोते हुए, कांपते हुए या तिरस्कार सहकर खाया जाता है, वह राक्षसी भोजन है।

९

प्रतिग्रहे संयमो वै तपो धारयते ध्रुवम्।
तद्धनं ब्राह्मणस्येह लुभ्यमानस्य विस्रवेत्॥

(अनु०, अ० ९३, श्लोक ४४)

प्रतिग्रह (दान) ग्रहण करने में संयम-रूपी तप का आश्रय लेना चाहिए। जो ब्राह्मण लोभ करता है, उसका दान से प्राप्त धन नष्ट हो जाता है।

१०

ऋणकर्ता च यो राजन् यश्च वार्धुषिको नरः।
प्राणिविक्रयवृत्तिश्च राजन्नार्हति केतनम्॥

(अनु०, अ० २३, श्लोक २१)

हे राजन्, ऋण करनेवाला, वार्धुषिक अर्थात् ब्याज खानेवाला तथा प्राणियों को बेचकर आजीविका करनेवाला मनुष्य आश्रय देने योग्य नहीं होता।

११

यावन्तः पतिता विप्रा जडोन्मत्तास्तथैव च।
चिकित्सका देवलका वृथानियमधारिणः॥
होतारो वृषलानां च वृषलाध्यापकास्तथा।
तथा वृषलशिष्याँश्च राजन्नार्हन्ति केतनम्॥

(अनु०, अ० २३, श्लोक १२-१६)

हे राजन्, जो ब्राह्मण पतित, मूर्ख या उन्मत्त हों, तथा जो चिकित्सक, पुजारी, व्यर्थ के नियम धारण करनेवाले हों तथा वृषलों के पुरोहित, अध्यापक अथवा शिष्य हों, उन्हें आश्रय नहीं देना चाहिए।

१२

कथं तस्मात् समुत्पन्नास्तन्निष्ठातदुपाश्रयाः।
तदेव निन्दां भाषेयुर्धाता तत्र न गर्ह्यते॥

(शां०, अ० १०, श्लोक १९)

संन्यासी लोग जहा से उत्पन्न हुए है, जिस आधार पर टिके हुए हैं तथा जिसपर आश्रित है, उसी गृहस्थाश्रम की निन्दा करते है। क्या वे इस प्रकार ईश्वर की निन्दा नही करते ?

१३

एतां बुद्धिं समास्थाय जीवितव्यं सदा भवेत्।
जीवन् पुण्यमवाप्नोति पुरुषो भद्रमश्नुते॥

(शां०, अ० १४१, श्लोक १०१)

जो मनुष्य जीवित रहता है वही पुण्य का संचय करता है और कल्याणों को प्राप्त करता है। मन मे यह विचार करके मनुष्य को कभी जीवन का परित्याग न करना चाहिए।

१४

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा।
द्वावेव सुखमेधेते दीर्घसूत्री विनश्यति॥

(शां०, अ० १३७, श्लोक १)

जो व्यक्ति आगे की सोचकर काम करता है तथा जिसे तत्काल उपाय सूझ जाता है वे दोनों सुख प्राप्त करते है। दीर्घसूत्री, अर्थात् काम को सदा टालते रहनेवाला, नष्ट हो जाता है।

१५

भवेत्सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्।
सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित्॥

(शां०, अ० १०९, श्लोक ५)

किसी समय सत्य बोलना भी उचित नहीं होता और झूठ बोलना उचित हो जाता है। मनुष्य सत्य और झूठ का विवेक करके ही धर्मज्ञ बनता है।

१६

यथा यथैव जीवेद्धि तत्कर्तव्यमहेलया।
जीवितं मरणाच्छ्रेयो जीवन्धर्ममवाप्नुयात्॥

(शां०, अ० १४१, श्लोक ६५)

जीवन को टिकाये रखने के लिए जो कुछ भी करना पड़े, उसे बिना संकोच करना चाहिए। मरने से जीना अच्छा है; जीवन रहेगा तो धर्म भी मिल जायगा।

१७

आयुष्मान् केन भवति अल्पायुर्वापि मानवः।
केन वा लभते कीर्तिं केन वा लभते श्रियम्॥

(अनु०, अ० १०४, श्लोक २)

हे पितामह! मनुष्य किन बातों से आयुष्मान् होता है तथा किन बातों से अल्पायु होता है? किन बातों से कीर्ति प्राप्त करता है और किन बातों से सम्पत्तिवान् होता है?

१८

आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम्।
आचारात्कीर्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च॥

(अनु०, अ० १०४, श्लोक ६)

आचार से मनुष्य दीर्घ जीवन प्राप्त करता है, आचार से सम्पत्ति प्राप्त करता है और आचार से ही वह इस लोक तथा परलोक में निर्मल कीर्ति प्राप्त करता है।

१९

नियमानां फलं राजन् प्रत्यक्षमिह दृश्यते॥

(अनु०, अ० ७५, श्लोक ९)

हे राजन्! संसार में नियम-पालन का फल स्पष्ट दिखाई देता है।

२०

सतां गुरूणां वृद्धानां कुलस्त्रीणां विशेषतः।
परिवादं न च ब्रूयात् परेषामात्मनस्तथा।
परिवादो ह्यधर्माय प्रोच्यते भरतर्षभ॥

(अनु०, अ० १०४, श्लोक १२९)

हे भरतश्रेष्ठ! सज्जनों, गुरुजनों, वृद्धों तथा कुलांगनाओं की निन्दा नहीं करनी चाहिए। इसी प्रकार पराई तथा आत्म-निन्दा भी न करनी चाहिए, क्योंकि परनिन्दा को पाप कहा गया है।

२१

निकृती हि नरो लोकान् पापान् गच्छत्यसंशयम्।
विदुलस्येव तत् पुष्पं मोघं जनयितुः स्मृतम्॥

(अनु०, अ० १०५, श्लोक ८)

उत्पीड़ित मनुष्य बाध्य होकर पाप के मार्ग पर चल पड़ता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। उसका जन्म पिता के लिए बेत के फूल की भांति निरर्थक माना जाता है।

२२

नाध्यापयेत् तथोच्छिष्टो नाधीयीत कदाचन।
वाते च पूतिगन्धे च मनसापि न चिन्तयेत्॥

(अनु०, अ० १०४, श्लोक ७१)

मुंह या हाथों के उच्छिष्ट रहते हुए अध्ययन नही करना चाहिए, और न अध्यापन करना चाहिए। तेज हवा तथा दुर्गन्धवाले स्थान में मानसिक चिन्तन भी नही करना चाहिए।

२३

संध्यायां न स्वपेद् राजन् विद्यां न च समाचरेत्।
न भुंजीत च मेधावी तथायुर्विन्दते महत्॥

(अनु०, अ० १०४, श्लोक ११८)

बुद्धिमान् मनुष्य को सन्ध्या के समय न तो सोना चाहिए, न अध्ययन करना चाहिए और न भोजन करना चाहिए। ऐसा करने से दीर्घायु प्राप्त होती है।

२४

नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादी
न हीनतः परमभ्याददीत।
ययास्य वाचा पर उद्विजेत
न तां वदेत रुषतीं पापलोक्याम्॥

(अनु०, अ० १०४, श्लोक ३१)

दूसरों के मर्म पर आघात न करे, क्रूरतापूर्ण बात न बोले, औरों को नीचा न दिखावे, जिस वाणी से दूसरे को दुःख हो तथा द्वेषपूर्ण हो, उसका प्रयोग न करे। ऐसी वाणी पाप-मार्ग की ओर ले जाती है।

२५

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
परस्य वा मर्मसु ये पतन्ति
तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु॥

(अनु०, अ० १०४, श्लोक ३२)

शब्द-रूपी बाण मुख से निकलकर ऐसी चोट पहुंचाते है कि आहत दिन-रात शोक में डूबा रहता है। जो शब्द दूसरे के मर्मस्थान को बेधते हैं, विवेकशील व्यक्ति उनका कभी प्रयोग न करें।

: १० :

लोक-व्यवहार

१

कार्यते यच्च क्रियते सच्चासच्च कृताकृतम्।
तत्राश्वसीत सत्कृत्वा असत्कृत्वा न विश्वसेत्॥

(अनु०, अ० १६४, श्लोक १)

मनुष्य के द्वारा भला अथवा बुरा, सुकृत अथवा दुष्कृत, स्वयं किया जाता है या दूसरे के द्वारा कराया जाता है। कुछ भी हो, भला करके आराम से सोये, किन्तु बुरा करके कभी निश्चिन्त न बैठे।

२

यत्राबलो वध्यमानस्त्रातारं नाधिगच्छति।
महान् दैवकृतस्तत्र दण्डः पतति दारुणः॥
(शां०, अ० ९१, श्लोक २२)

जहां पर दुर्बल मनुष्य को सबल के द्वारा पीड़ित होने पर कोई रक्षा करनेवाला नहीं मिलता, वहां विधाता का भयंकर दंड गिरता है।

३

कथं दुष्टं विजानीयादेतत्पृष्टो ब्रवीहि मे।
परोक्षमगुणानाह सद्गुणानभ्यसूयते॥
(शां०, अ० १०३, श्लोक ४५)

दुष्ट की क्या पहिचान है ? यह बताइये।
जो पीठ-पीछे दोषों को प्रकट करता है तथा गुणों से असूया रखता है।

४

परैर्वा कीर्त्यमानेषु तूष्णीमास्ते पराङ्मुखः।
करोत्यभीक्ष्णं संपृष्टमसंपृष्टश्च भाषते।
अदृष्टितो न कुरुते दृष्टो नैवाभिभाषते॥
(शां०, अ० १०३, श्लोक ४६)

तथा दूसरों द्वारा प्रशंसा किये जाने पर मुह मोड़कर चुपचाप बैठ रहता है, बारम्बार चिकनी-चुपड़ी बातें करता है और बिना बुलाये बोलता है, पीठ-पीछे काम नहीं करता और सामने बात नहीं कहता, वह दुष्ट है।

५

अधीत्य नीतिशास्त्राणि नीतियुक्तो न दृश्यते।
अनभिज्ञश्च साचिव्यं गमितः केन हेतुना।
विद्यायुक्तो ह्यवित्तश्च धनवान् दुर्मतिस्तथा॥

(अनु०, अ० १६३, श्लोक ७)

भगवान्! मनुष्य नीतिशास्त्रों का अध्ययन करके भी उनका अनुसरण नहीं करते। ऐसा कौन हेतु है, जिससे अनभिज्ञ भी मत्री बना दिया जाता है, विद्वान् के पास धन नही होता, और धनवान् दुर्मति होते है?

यदि विद्या सुख देनेवाली होती तो विद्वान् अवश्य सुखी होता और वह आजीविका के लिए विद्याहीन का आश्रय न लेता।

६

नात्यन्तं गुणवत् किंचिन्न चाप्यत्यन्तनिर्गुणम्।
उभयं सर्वकार्येषु दृश्यते साध्वसाधु च॥

(शां०, अ० १५, श्लोक ५०)

संसार में कोई बात पूर्णतया गुणोंवाली नहीं होती और न कोई सर्वथा निर्गुण होती है। सभी कार्यों में भलाई और बुराई दोनों दिखाई देती हैं।

७

मासार्धमासोपवासाद्यत्तपो मन्यते जनः।
आत्मतंत्रोपघाती स न तपस्वी न धर्मवित्॥

(अनु०, अ० ९४, श्लोक ४)

जो व्यक्ति एक महीना या पंद्रह दिन लम्बा उपवास करके अपने को तपस्वी समझता है वह केवल आत्मतंत्र का उपघात करता है। वह न तपस्वी है, न धर्मात्मा।

८

तस्मात् सान्त्वं प्रयोक्तव्यं दण्डमाधित्सतोऽपि हि।
फलं च जनयत्येवं न चास्योद्विजते जनः॥

(शां०, अ० ८४, श्लोक ९)

अतः दण्ड देने की इच्छा होने पर भी राजा को अपराधी के साथ मधुर व्यवहार करना चाहिए। उसके प्रति सान्त्वना-भरे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। ऐसा करके वह अपना प्रयोजन सिद्ध कर ही लेता है और दूसरा मनुष्य उद्विग्न भी नहीं होता है।

९

न च शत्रुरवज्ञेयो दुर्बलोऽपि बलीयसा।
अल्पोऽपि हि दहत्यग्निर्विषमल्पं हिनस्ति च॥

बलवान् मनुष्य शत्रु के दुर्बल होने पर भी उसकी उपेक्षा न करे। थोड़ी-सी आग भी सब कुछ जला डालती है और थोड़ा-सा विष भी मृत्यु के लिए पर्याप्त होता है।

१०

यस्तु वृद्धया न तृप्येत क्षये दीनतरो भवेत्।
एतदुक्तममित्रस्य निमित्तमिति चक्षते॥

(शां०, अ० ८०, श्लोक १६)

जो व्यक्ति वेतन-आदि की वृद्धि से कभी तृप्त नही होता तथा कष्ट के समय दीन बन जाता है अर्थात् साहस छोड़ देता है, वह शत्रु के लिए निमित्त कहा गया है; अर्थात् अनायास ही शत्रु की ओर झुक जाता है।

११

यन्मन्येत ममाभावादस्याभावो भवेदिति।
तस्मिन् कुर्वीत विश्वासं यथा पितरि वै तथा॥

(शां०, अ० ८०, श्लोक १७)

जिसके विषय में यह समझो कि मेरे न रहने पर वह भी समाप्त हो जायगा, उसमें पिता के समान विश्वास करे।

१२

अपि सर्वगुणैर्युक्तं भर्तारं प्रियवादिनम्।
अभिद्रुह्यति पापात्मा न तस्मिन् विश्वसेज्जने॥

(शां०, अ० ९३, श्लोक ३८)

जो पापात्मा मनुष्य अपने सर्वगुण-सम्पन्न और सर्वदा प्रिय वचन बोलनेवाले स्वामी से भी अकारण द्रोह करता है, उसपर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।

१३

कृतप्रज्ञश्च मेधावी बुधो जानपदः शुचिः।
सर्वकर्मसु यः शुद्धः स मंत्रं श्रोतुमर्हति॥

(शां०, अ० ८३, श्लोक ३७)

जो व्यक्ति स्थिर निश्चयवाला, बुद्धिमान्, विद्वान्, लोक-व्यवहार जाननेवाला, सदाचारी तथा सभी कार्यों में ईमानदार है, वही मंत्र अर्थात् रहस्य सुनने के योग्य है।

१४

अविद्वानशुचिः स्तब्धः शत्रुसेवी विकत्थनः।
असुहृत् क्रोधनो लुब्धो न मंत्रं श्रोतुमर्हति।।

(शां०, अ० ८३, श्लोक ३७)

जो व्यक्ति मूर्ख, कपटी, शत्रु से परिचय रखनेवाला, झूठी आत्म-प्रशंसा करने वाला है तथा जो अपकारी, क्रोधी अथवा लोभी है, वह गुप्त बात या रहस्य सुनने के योग्य नहीं है।

१५

सुकृतस्य हि सान्त्वस्य श्लक्ष्णस्य मधुरस्य च।
सम्यगासेव्यमानस्य तुल्यं जातु न विद्यते।।

(शां०, अ० ८४, श्लोक १०)

यदि भली प्रकार सान्त्वनापूर्ण, मधुर एवं स्नेहयुक्त वचन बोला जाय और सदा सब प्रकार से उसीका सेवन किया जाय तो उसके समान वशीकरण का साधन इस जगत् में निस्संदेह दूसरा नहीं है।

१६

न हर्तव्यं परधनमिति धर्मः सनातनः।
मन्यन्ते बलवन्तस्तं दुर्बलैः संप्रवर्तितम्।।

(शां०, अ० २५९, श्लोक १०)

दूसरे के धन का अपहरण नहीं करना चाहिए, यह सनातन धर्म है। किन्तु बलवान् लोग मानते हैं कि इसे दुर्बलों ने चलाया है।

१७

दातव्यमित्ययं धर्म उक्तो भूतहिते रतैः।
तं मन्यन्ते धनयुताः कृपणैः संप्रवर्तितम्॥
(शां०, अ० २५९, श्लोक १८)

जो लोग प्राणियों के हित में लगे हुए हैं उन्होंने दान को धर्म बताया है, किन्तु यह बात धनवानों को अच्छी नहीं लगती। वे मानते हैं कि यह धर्म साहसहीन आलसियों द्वारा चलाया गया है।

१८

आदानादपि भूतानां मधुरामीरयन् गिरम्।
सर्वलोकमिमं शक्र सान्त्वेन कुरुते वशम्॥
(शां०, अ० ८४, श्लोक ८)

हे शक्र, जो व्यक्ति अपहरण करते समय भी मीठा बोलता है, वह सांत्वना के प्रयोग द्वारा अखिल विश्व को वश में कर लेता है।

१९

हीनतेजोऽभिसंसृष्टो नैव जातु व्यवस्यति।
अवश्यं जनयत्येव सर्वकर्मसु संशयम्॥
(शां०, अ० ८३, श्लोक २५)

तेजोहीन व्यक्ति कार्यसंकट के उपस्थित होने पर व्यवसाय-हीन हो जाता है, वह सभी कार्यों में संदेह उत्पन्न करता है, अर्थात् उसके भरोसे कोई कार्य नहीं छोड़ा जा सकता।

२०

एकान्तेन हि विश्वासो कृत्स्नो धर्मार्थनाशकः।
अविश्वासश्च सर्वत्र मृत्युना च विशिष्यते।।

(शां०, अ० ८०, श्लोक १०)

अत्यन्त विश्वास किसीपर न करना चाहिए। वह धर्म और अर्थ दोनों का नाश करता है। पर सर्वत्र संदेहशील होना भी मृत्य से बढ़कर है।

२१

असाधुः साधुतामेति साधुर्भवति दारुणः।
अरिश्च मित्रं भवति मित्रं चापि प्रदुष्यति।।
अनित्यचित्तः पुरुषस्तस्मिन्को जातु विश्वसेत्।
तस्मात्प्रधानं यत्कार्यं प्रत्यक्षं तत्समाचरेत्।।

(शां०, अ० ८०, श्लोक ८-९)

कभी दुर्जन सज्जन बन जाता है और कभी सज्जन दुर्जन हो जाता है। इसी प्रकार कभी शत्रु मित्र और मित्र शत्रु भी बन जाता है।

मनुष्य का मन अस्थिर होता है उसमें विश्वास नही किया जा सकता। इसलिए जो कार्य आवश्यक हो, उसे अपनी आंखों के सामने पूरा कर देना चाहिए।

२२

यस्तस्यार्थो न रोचेत न तं तस्य प्रकाशयेत्।।

जिसकी जो बात रुचिकर न हो, उसे उसके सामने प्रकट नहीं करना चाहिए।

: ११ :

दान-धर्म

१

प्राणा ह्यन्नं मनुष्याणां तस्माज्जन्तुश्च जायते।
अन्ने प्रतिष्ठितो लोकस्तस्मादन्नं प्रशस्यते॥
(अनु०, अ० ११२, श्लोक ११)

अन्न ही मनुष्यो का प्राण है, उसीसे प्राणी उत्पन्न होते है। सारा संसार अन्न के सहारे टिका हुआ है, अतः अन्न-दान सबसे बढ़कर है।

२

कृशाय कृतविद्याय वृत्तिक्षीणाय सीदते।
अपहन्यात् क्षुधां यस्तु न तेन पुरुषः समः।
(अनु०, अ० ५९, श्लोक ११)

जो व्यक्ति दुर्बल, विद्वान्, जीविकाहीन एवं दुःखी व्यक्ति को अन्न देकर उसकी क्षुधा मिटाता है, उसके समान संसार में कोई नही।

३

न हिरण्यैर्न वासोभिर्नान्यद्दानेन भारत।
प्राप्नुवन्ति नराः श्रेयो यथा ह्यन्नप्रदाः प्रभो॥
(अनु०, अ० ६६, श्लोक ५८)

हे राजन्, जो श्रेय अन्न-दान करनेवालों को प्राप्त होता है वह स्वर्ण-दान वस्त्र-दान या किसी अन्य दान से नहीं प्राप्त होता।

४

यो दद्यादपरि क्लिष्टं, अन्नमध्वनि वर्तते।
श्रांतायादृष्टपूर्वाय तस्य पुण्यफलं महत्॥

(अनु०, अ० ७, श्लोक ७)

जो व्यक्ति रास्ते में चलते हुए थके-मादे अपरिचित अतिथि को बिना किसी प्रकार का खेद अनुभव किये अन्न देता है, उसको महान् पुण्य प्राप्त होता है।

५

यत्ते ते न करिष्यन्ति कृतं ते न भविष्यति।
यज्ञान् साधय साधुभ्यः स्वाद्वन्नान् दक्षिणावतः॥

(अनु०, अ० ६१, श्लोक ८)

यदि वे तुम्हारे लिए शुभ कामना नही करेंगे तो तुम्हें पुण्य की प्राप्ति नहीं होगी, अतः श्रेष्ठ पुरुषों के लिए स्वादिष्ट अन्न और दक्षिणा से युक्त यज्ञों का अनुष्ठान करो।

६

आनृशंस्यं परो धर्मो याचते यत् प्रदीयते।
अयाचतः सीदमानान् सर्वोपायैर्निमन्त्रयेत्॥

(अनु०, अ० ६०, श्लोक ६)

याचक को जो दान दिया जाता है, वह दयारूप और परम धर्म है। परन्तु जो लोग दुःखी होने पर भी याचना नही करते, उनको तो अनेक उपायों से अपने पास बुलाकर दान देना चाहिए।

७

पानीयस्य प्रदानेन कीर्तिर्भवति शाश्वती।
अन्नस्य तु प्रदानेन तृप्यन्ते कामभोगतः॥
(अनु०, अ० ५७, श्लोक २०)

जलदान अर्थात् प्याऊ आदि लगवाने से चिर ख्याति प्राप्त होती है। अन्नदान से सभी इच्छाएं पूर्ण होती है।

८

शीत - वातातपसहां गृहभूमिं सुसंस्कृताम्।
प्रदाय सुरलोकस्थः पुण्यांतेऽपि न चाल्यते॥
(अनु०, अ० ६६, श्लोक २७)

जो व्यक्ति सरदी, गरमी तथा आंधी आदि से बचाव करने-वाली, तथा संस्कार की हुई गृहभूमि का दान करता है, वह शाश्वत स्वर्ग प्राप्त करता है। पुण्य समाप्त होने पर भी वहां से नहीं हटाया जाता।

९

न चोषरां न निर्दग्धां महीं दद्यात्कथंचन।
न श्मशानपरीवृतां न च पापनिषेविताम्॥
(अनु०, अ० ६६, श्लोक ३२)

ऊसर, जली हुई, श्मशान से घिरी हुई तथा जहां पापियों का निवास या आवागमन हो, ऐसी भूमि को दान में नहीं देना चाहिए।

१०

प्रादेशमात्रं भूमेस्तु योवद्यादनुपस्कृतम्।
न सीदति स कृच्छ्रेषु न च दुर्गाण्यवाप्नुते।।

(अनु०, अ० ६६, श्लोक २६)

जो व्यक्ति किसी अपरिचित को प्रादेशमात्र भी भूमि का दान देता है, उसे विपत्तियां नहीं सतातीं। वह सभी संकटों को पार कर जाता है।

११

तडागानां च वक्ष्यामि कृतानां चापि ये गुणाः।
त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजनीयस्तडागवान्।।

(अनु०, अ० ५७, श्लोक ४)

मैं तालाबों का निर्माण करानेवालों के गुणों का वर्णन करता हूं। जो तालाब बनवाता है, वह तीनों लोकों में पूजनीय है।

१२

निदाघकाले पानीयं तडागे यस्य तिष्ठति।
वाजिमेधफलं तस्य फलं वै मुनयो विदुः।।

(अनु०, अ० ५८, श्लोक १५)

गरमी के दिनों मे जिस मनुष्य के तालाब मे पानी रहता है, उसे अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है। यह फलश्रुति मुनियों द्वारा की गई है।

१३

सकुलं तारयेत्सर्वं यस्य खाते जलाशये।
गावः पिबंति सलिलं साधवश्च नराः सदा।।

(अनु०, अ० ५८, श्लोक १६)

जिसके द्वारा खुदवाये गए जलाशय में गायें तथा साधुजन पानी पीते हैं उसका सारा कुल तर जाता है।

१४

अथवा मित्रसदनं मैत्रं मित्रविवर्धनम्।
कीर्तिसंजननं श्रेष्ठं तडागानां निवेशनम्॥

(अनु०, अ० ५८, श्लोक ५)

जलाशयों का निर्माण कीर्ति उत्पन्न करता है तथा श्रेष्ठ है। उससे मित्रों का आवागमन होता है एवं मित्रता की पुष्टि तथा वृद्धि होती है।

१५

धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः।
तडागः सुकृतं देशे क्षेत्रमेकं महाश्रयम्॥

(अनु०, अ० ५८, श्लोक ६)

मनीषियों ने धर्म, अर्थ और काम का फल बताया है कि जलाशय बनवाना बहुत बड़ा पुण्य है, वह सबको आश्रय देनेवाला महाक्षेत्र है।

१६

दीपालोकप्रदानेन चक्षुष्मान् भवते नरः।
प्रेक्षणीय - प्रदानेन स्मृतिं मेधां च विन्दति॥

(अनु०, अ० ५७, श्लोक २२)

दीप-दान से मनुष्य की आंखें स्वस्थ होती है। सुन्दर खिलौनों की भेंट देने से बुद्धि और स्मृति बढ़ती है।

१७

अतीतानागते चोभे पितृवंशे च भारत।
तारयेद्वृक्षरोपी च तस्माद् वृक्षाँश्च रोपयेत्॥

(अनु०, अ० ५८, श्लोक २६)

जो व्यक्ति वृक्षों को रोपता है उसकी अगली तथा पिछली पीढ़ियां तर जाती हैं, अतः वृक्ष अवश्य लगाने चाहिए।

१८

पुष्पैः सुरगणान् वृक्षाः फलैश्चापि तथा पितृन्।
छायया चातिथिं तात पूजयन्ति महीरुहाः॥

(अनु०, अ० ५८, श्लोक २८)

हे तात, वृक्ष फूलों के द्वारा देवताओ की, फलों के द्वारा पितरों की तथा छाया के द्वारा अतिथियों की पूजा करते हैं।

१९

स्थावराणां च भूतानां जातयः षट् प्रकीर्तिताः।
वृक्षगुल्मलतावल्ल्यस् त्वक्सारास्तृणजातयः॥

(अनु०, अ० ५८, श्लोक २३)

स्थावर जीवों की छः जातियां मानी गई है: १. वृक्ष, २. गुल्म, अर्थात् झाड़ियां ३. लताए, ४. बेल, ५. त्वक्सार अर्थात् जिनमें छाल ही मुख्य है और ६. घास।

२०

एता जात्यस्तु वृक्षाणां तेषां रोपे गुणास्त्विमे।
कीर्तिश्च मानुषे लोके प्रेत्य चैव फलं शुभम्॥

(अनु०, अ० ५८, श्लोक २४)

ये छः वनस्पति की जातियां हैं। इनको लगाने से इस संसार में यश मिलता है और मरने के उपरान्त शुभ फलों की प्राप्ति होती है।

२१

सर्वेषामेव दानानामन्नं श्रेष्ठमुदाहृतम्।
पूर्वमन्नं प्रदातव्यमृजुना धर्ममिच्छता॥

(अनु०, अ० ११२, श्लोक १०)

सब प्रकार के दानों में अन्न का दान श्रेष्ठ बताया गया है। अतः धर्म की इच्छा रखनेवाले मनुष्य को सरल भाव से अन्न का ही दान करना चाहिए।

२२

न्यायलब्धं प्रदातव्यं द्विजातिभ्योऽन्नमुत्तमम्।
स्वाध्यायं समुपेतेभ्यः प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥

(अनु०, अ० ११२, श्लोक १३)

स्वाध्याय में तत्पर रहनेवाले ब्राह्मणों के लिए प्रसन्न चित्त से न्यायोपार्जित उत्तम अन्न का दान करना चाहिए।

२३

षड्भाग - परिशुद्धं च कृषेर्भागमुपार्जितम्।
वैश्यो ददद् द्विजातिभ्यः पापेभ्यः परिमुच्यते॥

(अनु०, अ० ११२, श्लोक १९)

जो वैश्य खेती से अन्न पैदा करके उसका छठा भाग राजा को देकर बचे हुए में से शुद्ध अन्न का ब्राह्मण को दान करता है, वह पापों से मुक्त हो जाता है।

२४

अवाप्य प्राणसंदेहं कार्कश्येन समार्जितम्।
अन्नं दत्वा द्विजातिभ्यः शूद्रः पापात्मुच्यते॥

(अनु०, अ० ११२, श्लोक २०)

शूद्र भी यदि प्राणों की परवा न करके कठोर परिश्रम से कमाया हुआ अन्न ब्राह्मणों को दान करता है तो पाप से छुटकारा पा जाता है।

२५

सर्वभूतेषु यो विद्वान् ददात्यभयदक्षिणाम्।
दाता भवति लोके स प्रजानां नात्र संशयः॥

(अनु०, अ० ११५, श्लोक १८)

जो विद्वान् सब जीवों को अभय-दान कर देता है, वह इस संसार में निःसंदेह प्राणदाता माना जाता है।

२६

दत्वा वृत्तिकरीं भूमिं पातकेनापि मुच्यते।
पारायणैः पुराणानां मुच्यते पातकैर्द्विजः॥

(अनु०, अ० ११२, श्लोक १६-१७)

जीविका चलानेवाली भूमि का दान करके भी मनुष्य पातक से मुक्त हो जाता है। पुराणों के पाठ से भी ब्राह्मण पातकों से छुटकारा पा जाता है।

: १२ :

धर्म-निर्णय

१

चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पर्षत् त्रैविद्यमेव वा।
सा ब्रूते यं स धर्मः स्यादेको वाध्यात्मवित्तमः॥

(या० स्मृति, आ०, श्लोक ९)

वेद तथा धर्म को जाननेवाले चार विद्वान् अथवा तीन (ऋक्, यजुः और साम) वेदों को जाननेवाले विद्वानों की परिषद् जो निर्णय दे वही धर्म है; किन्तु अध्यात्मवेत्ता, अर्थात् दार्शनिक अकेला ही निर्णय दे सकता है।

२

लोकयात्रार्थमेवेह धर्मप्रवचनं कृतम्।
अहिंसा साधुहिंसेति श्रेयान् धर्मपरिग्रहः॥

(शां०, अ० २५९, श्लोक ४)

संसार में धर्म का प्रवचन जीवन-निर्वाह के लिए ही किया गया है। अहिंसा अच्छी है या हिंसा, यह निर्णय भी इसी आधार पर किया जायगा। इसीको ध्यान में रखकर धर्म का पालन करना चाहिए।

३

एवं विद्वानदीनात्मा व्यसनस्थो जिजीविषुः।
सर्वोपायैरुपायज्ञो दीनमात्मानुमुद्धरेत् ॥
(शां०, अ० १४१, श्लोक १००)

ज्ञानी मनुष्य विपत्तियां आने पर भी अदीन रहकर जीने की इच्छा करे। उपायों को जाननेवाला बुद्धिमान् सभी उपायों द्वारा दुर्बल आत्मा का उद्धार करे।

४

नैकमिच्छेद् गणं हित्वा स्याच्चेदन्यतरग्रहः।
यस्त्वेको बहुभिः श्रेयान् कामं तेन गणं त्यजेत् ॥
(शां०, अ० ८३, श्लोक १२)

यदि गण तथा व्यक्ति में से किसी एक को चुनने का प्रश्न आये तो गण को छोड़कर व्यक्ति को न चुने; किन्तु यदि एक व्यक्ति बहुत-से व्यक्तियों से श्रेष्ठ हो तो उसके लिए गण को भी छोड़ा जा सकता है।

५

सत्येन हि स्थितो धर्मः उपपत्त्या तथा परे।
साध्वाचारतया केचित् तथैवौपयिकादपि ॥
(शां०, अ० १००, श्लोक २)

धर्म सत्य पर आश्रित है, उसका निश्चय कुछ लोग उपपत्ति, अर्थात् युक्ति, के द्वारा करते है, कुछ सज्जनों के आचार द्वारा, और कुछ अवसर के अनुसार।

६

सदाचारः स्मृतिर्वेदाः त्रिविधं धर्मलक्षणम्।
चतुर्थमर्थमित्याहुः कवयो धर्मलक्षणम्।।

(शां०, अ० २५९, श्लोक ३)

सदाचार, स्मृति और वेद—धर्म के ये तीन आधार है। विद्वान् लोग अर्थ, अर्थात् प्रयोजन-सिद्धि, को भी धर्म का चौथा आधार मानते हैं।

७

आचारलक्षणो धर्मः संतश्चारित्रलक्षणाः।
साधूनां च यथावृत्तमेतदाचारलक्षणम्।।

(अनु०, अ० १०४, श्लोक ९)

धर्म का मूल आचार है, सज्जनता का मूल चरित्र है और सज्जनों का जीवन ही आचार का मूल है।

८

जिज्ञासा तु न कर्तव्या धर्मस्य परितर्कणात्।

(अनु०, अ० १६२, श्लोक २१)

धर्म के विषय में तर्क-वितर्क नही करना चाहिए।

९

रुचितो वर्तते धर्मो न बलात् संप्रवर्तते।।

(शां०, अ० ७८, श्लोक १०)

धर्म अपनी रुचि से अंगीकार किया जाता है, किसीको बलपूर्वक धर्मात्मा नहीं बनाया जा सकता।

१०

धर्माधर्मेण राजानश्चरन्ति विजिगीषवः।

(शां०, अ० ८०, श्लोक ५)

राजा लोग दूसरों को जीतने की इच्छा से धर्म एवं अधर्म, सभीका आचरण करते है।

११

प्रवृत्तिलक्षणो धर्मः प्रजार्थिभिरुदाहृतः।
यथोक्तं राजशार्दूल न तु तन्मोक्षकाङ्क्षिणाम्॥

(अनु०, अ० ११५, श्लोक ४७)

नृपश्रेष्ठ ! प्रजार्थी पुरुषों ने प्रवृत्ति-रूप धर्म का प्रतिपादन किया है; परन्तु वह मोक्ष की अभिलाषा रखनेवाले विरक्त पुरुषों के लिए अभीष्ट नहीं है।

१२

लोभाद् वा बुद्धिमोहाद् वा बलवीर्यार्थमेव च।
संसर्गादथ पापानामधर्मरुचिता नृणाम्॥

(अनु०, अ० ११५, श्लोक ३३)

लोभ से, बुद्धि-मोह से, बल-वीर्य की प्राप्ति के लिए अथवा पापियों के संसर्ग में आने से मनुष्यों की अधर्म में रुचि हो जाती है।

: १३ :

राज-धर्म

१

राजा रंजयति प्रजाः।

(शां०, अ० ५६, श्लोक ३६)

राजा वही है जो प्रजा का पालन करता है।

२

नृपतिः सुमुखश्च स्यात् स्मितपूर्वाभिभाषिता।
असद्भ्यश्च समादद्यात्सद्भ्यस्तु प्रतिपादयेत्॥

(शां०, अ० ५७, श्लोक १९)

राजा को सदा प्रसन्नमुख रहना चाहिए तथा स्मितपूर्वक भाषण करना चाहिए। उसे चाहिए कि वह दुष्टों से धन अपहरण करके सज्जनों को प्रदान करे।

३

कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्।
इति ते संशयो माभूद् राजा कालस्य कारणम्॥

(शां०, अ० ६९, श्लोक ७९)

हे युधिष्ठिर, काल राजा का कारण है अर्थात् शासन का भला या बुरा होना काल पर अवलम्बित है; अथवा, राजा काल का कारण है अर्थात् वही भले या बुरे युग का निर्माण करता है। तुम्हें यह सन्देह नहीं होना चाहिए; क्योंकि राजा ही काल का निर्माण करता है।

४

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्च भरतर्षभ।
राजकृतानि सर्वाणि राजैव युगमुच्यते॥

(शां०, अ० ९१, श्लोक ६)

हे भरतश्रेष्ठ, कृत, द्वापर, त्रेता तथा कलियुग सभी राजा के द्वारा ही निर्मित होते हैं। वास्तव में राजा ही युग है।

५

मृदुर्हि राजा सततं लंघ्यो भवति सर्वशः।
तीक्ष्णाच्चोद्विजते लोकस्तस्मादुभयमाश्रयेत्॥

(शां०, अ० ५६, श्लोक २१)

जो राजा सदा मृदु रहता है उसकी आज्ञा का पालन नहीं होता और जो कठोर होता है उससे लोग घबरा जाते हैं। अतः राजा को मृदुता और कठोरता दोनो का समयानुसार आश्रय लेना चाहिए।

६

उदयन् हि यथा सूर्यो नाशयत्यशुभं तमः।
राजधर्मास्तथलोक्यां निक्षिपंत्यशुभां गतिम्॥

(शां०, अ० ५६, श्लोक ७)

जैसे सूर्य उदित होते ही घोर अधकार का नाश कर देता है, वैसे ही राजधर्म प्रजाओं के अशुभ आचरणों का, जो उन्हें पुण्य लोकों से वंचित कर देते हैं, निवारण करता है।

७

न च शुद्धानृशंस्येन शक्यं राज्यमुपासितम्।

(शां०, अ० ७५, श्लोक १८)

शुद्ध करुणा के द्वारा राज्य का पालन नहीं किया जा सकता।

८

सर्वाभिशंकी नृपतिः यश्च सर्वहरो भवेत्।
स क्षिप्रमनृजुर्लुब्धः स्वजनेनैव वध्यते॥

(शां०, अ० ५७, श्लोक २७)

जो राजा सभी पर संदेह करता है तथा सबकुछ छीन लेता है, ऐसा कुटिल, लोभी शासक शीघ्र ही स्वजनों द्वारा मार दिया जाता है।

९

जलौकावत् पिबेत् राष्ट्रं मृदुनैव नराधिपः।
व्याघ्रीव च हरेत् पुत्रान् संदशेन्न च पीडयेत्॥

(शां०, अ० ८७, श्लो० ५)

राजा जलौका यानी जोंक के समान मृदु उपायों से राष्ट्र का पान करे; और जिस प्रकार व्याघ्री अपने पुत्रों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय, दांतों से पूरी तरह पकड़ती हुई भी उन्हें दुःख नहीं देती, इसी प्रकार राजा भी प्रजा पर नियंत्रण तो रखे, किन्तु उसे कष्ट न पहुंचाये।

१०

यथा शल्यकवानाखुः पदं धूनयते सदा।
अतीक्ष्णेनाभ्युपायेन तथा राष्ट्रं समापिबेत्॥

(शां०, अ० ८८, श्लोक ९)

जैसे तीखे दांतोंवाला चूहा सोये हुए मनुष्य के पैर के मांस को ऐसी कोमलता से काटता है कि वह मनुष्य केवल पैर को कम्पित करता है, उसे पीड़ा का ज्ञान नहीं होने पाता, उसी प्रकार राजा कोमल उपायों से ही राष्ट्र से कर ले, जिससे प्रजा दुःखी न हो।

११

प्रिये नातिभृशं हृष्येदप्रिये न च संज्वरेत्।
न तप्येदर्थकृच्छ्रेषु प्रजाहितमनुस्मरन्॥

(शां०, अ० ९३, श्लोक ११)

(राजा) प्रिय वस्तु की प्राप्ति होने पर बहुत अधिक हर्षित न हो और अप्रिय होने पर व्याकुल न हो। कष्ट तथा विपत्ति के समय भी। सदा प्रजा के हित को ध्यान में रखते हुए दुःखी न हो।

१२

यथा हि गर्भिणी हित्वा स्वं प्रियं मनसोऽनुगम्।
गर्भस्य हितमाधत्ते तथा राज्ञाप्यसंशयम्॥

(शां०, अ० ५६, श्लोक ४५)

जिस प्रकार गर्भवती स्त्री अपने मनोनुकूल एवं प्रिय भोजन आदि को छोड़कर गर्भ के हित का ध्यान रखती है, उसी प्रकार राजा को भी प्रजा का ध्यान रखना चाहिए।

१३

यो हि द्रोग्धीमुपास्ते च स नित्यं विंदते पयः।
एवं राष्ट्रमुपायेम भुंजानो लभते फलम्॥

(शां०, अ० ७१, श्लोक १७)

जैसे जो व्यक्ति दूध देनेवाली गाय की सेवा करता है वही दूध प्राप्त करता है—इसी प्रकार राष्ट्र का उपायपूर्वक उपभोग करनेवाला राजा सुफल प्राप्त करता है।

१४

भृतो वत्सो जातबलः पीडां सहति भारत।
न कर्म कुरुते वत्सो भृशं दुग्धो युधिष्ठिर॥

(शां०, अ० ८७, श्लोक २१)

हे भारत, जब बछड़ा भरण-पोषण के द्वारा बलवान हो जाता है तो पीड़ा भी सह जाता है। हे युधिष्ठिर, बहुत अधिक शोषित होने पर बछड़ा काम नही करता। इसी प्रकार राजा अपने परिजन से काम लेते समय उनके भरण-पोषण का भी पूरा ध्यान रखे।

१५

न पूर्णोस्मीति मन्येत धर्मतः कामतोऽर्थतः।
बुद्धितो मित्रतश्चापि सततं वसुधाधिपः॥

(शां०, अ० ९२, श्लोक १२)

राजा धर्म, अर्थ, काम, बुद्धि तथा मित्र-वर्ग की दृष्टि से अपनेको कभी पूर्ण न समझे।

१६

अग्निना तामसं दुर्गं नौभिराप्यं च गम्यते।
राजदुर्गावतरणे नोपायं पण्डिता विदुः॥

(शां०, अ० ८२, श्लोक ४१)

जो दुर्ग अंधकार से व्याप्त है, वहां अग्नि के द्वारा पहुंचा जा सकता है और जल-दुर्ग नौकाओं के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु राजा-रूपी दुर्ग को पार करने के लिए पंडितों के पास कोई उपाय नहीं है।

१७

आशीविषैः परिवृतः कूपस्त्वमपि पार्थिवः।
दुर्गतीर्था बृहत्कूला कारीरा वेत्रसंयुता॥
नदी मधुरपानीया यथा राजंस्तथा भवान्॥
(शां०, अ० ८२, श्लोक ४७-४८)

हे राजन्, तुम ऐसे कूप हो, जो सांपों से घिरा हुआ है। तुम मीठे पानी की ऐसी नदी हो जिसमे उतरना कठिन है, जिसके तट बहुत ऊंचे है, तथा जो करीर और बेत आदि के झाड़-झखाड़ से घिरी हुई है।

१८

कृपणानाथवृद्धानां यदाश्रु परिमार्जति।
हर्षं संजनयन् नृणां स राज्ञो धर्म उच्यते॥
(शां०, अ० ९१, श्लोक ३८)

दुःखी, अनाथ तथा वृद्धो के आंसुओं को पोंछना तथा प्रजा मे हर्ष की वृद्धि करना राजा का धर्म है।

१९

असतां प्रतिषेधश्च सतां च परिपालनम्।
एष राज्ञां परो धर्मः समरे चापलायनम्॥
(शां०, अ० १४, श्लोक १६)

दुष्टों का निवारण, सज्जनों का परिपालन तथा युद्ध में कायरता न दिखाना राजाओं का परम धर्म है।

२०

राज्ञः प्रमाददोषेण दस्युभिः परिमुष्यताम्।
अशरण्यः प्रजानां यः स राजा कलिरुच्यते॥

(शां०, अ० १२, श्लोक २९)

राजकीय अव्यवस्था के कारण जब डाकू प्रजा को लूटने लगें, तब प्रजा को जो राजा त्राण नहीं दे सकता, अर्थात् डाकुओं से प्रजा की रक्षा नही कर सकता, वह मूर्तिमान कलियुग है।

२१

मित्रता सर्वभूतेषु दानमध्ययनं तपः।
ब्राह्मणस्यैव धर्मः स्यान्न राज्ञो राजसत्तम॥

(शां०, अ० १४, श्लोक १५)

हे राज-श्रेष्ठ! सब प्राणियों से मित्रता, दान, अध्ययन और तप—यह ब्राह्मण का ही धर्म हो सकता है, राजा का नहीं।

२२

प्रत्याहर्तुमशक्यं स्याद् धनं चौरैर्हृतं यदि।
तत् स्वकोशात्प्रदेयं स्यादशक्तेनोपजीवतः॥

(शां०, अ० ७५, श्लोक १०)

चोरों या लुटेरों ने यदि किसीके धन का अपहरण कर लिया हो और राजा पता लगाकर उस धन को लौटा न सके, तो ऐसे शक्तिहीन नरेश को चाहिए कि वह अपने आश्रय में रहनेवाले उस मनुष्य को उतना ही धन राजकीय खजाने से दे दे।

२३

क्रियानियमितान् साधून् पुत्रदारैश्च कर्शितान्।
अयाचमानान् कौन्तेय सर्वोपायैर्निमंत्रयेत्।।

(अनु०, अ० ५९, श्लोक १२)

जो सज्जन पुरुष अपने कर्त्तव्य में नियमित रूप से लगे हुए है, किन्तु पुत्र, पत्नी आदि पारिवारिक बोझ से दब गए हैं, हे कौतेय, ऐसे व्यक्तियों को सभी प्रकार से निमंत्रित करना चाहिए। उनकी याचना की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।

२४

आत्मनश्च परेषां च वृत्तिं संरक्ष भारत।
पुत्रवच्चापि भृत्यान् स्वान् प्रजाश्च परिपालय।।

(अनु०, अ० ६१, श्लोक १७)

हे युधिष्ठिर, अपनी तथा दूसरों की आजीविका की रक्षा करो! नौकरों तथा प्रजा-जनों का पुत्रों के समान पालन करो!

२५

यावतः साधुधर्मान् वै सन्तः संवर्धयन्त्युत।
सर्वस्वैश्चापि भर्तव्या नरा ये बहुकारिणः।।

(अनु०, अ० ६१, श्लोक ११)

जो सज्जन सदा सभी सद्धर्मो का प्रचार और विस्तार करते रहते हैं, अपना सर्वस्व देकर भी उनका भरण-पोषण करना चाहिए। वे राजा के लिए अत्यन्त उपकारी होते है।

२६

हृतं कृपणवित्तं हि राष्ट्रं हन्ति नृपश्रियम्।
दद्याच्च महतो भोगान् क्षुद्भयं प्रणुदेत् सताम्।।

(अनु०, अ० ६१, श्लोक २६)

यदि किसी दरिद्र का धन छीन लिया जाय तो वह राजा के राज्य और लक्ष्मी का विनाश कर देता है। अतः राजा को चाहिए कि दीनों का धन न लेकर उन्हें भोग्य वस्तुए अर्पित करे और श्रेष्ठ पुरुषो को भूख का कष्ट न होने दे।

२७

वृद्धबालधनं रक्ष्यमन्धस्य कृपणस्य च।
न खातपूर्वं कुर्वीत न रुदन्ती धनं हरेत्।।

(अनु०, अ० ६१, श्लोक २५)

राजा वृद्ध, बालक, दीन और अंधे मनुष्य के धन की रक्षा करे। यदि प्रजा कूप खोदकर किसी भांति सिंचाई करके अन्न पैदा करती हो तो उसका धन नही लेना चाहिए तथा किसी क्लेश में पड़कर रोती हुई स्त्री का धन भी न ले।

२८

न हिंस्यात्परवित्तानि देयं काले च दापयेत्।
अभृतानां भवेद् भर्ता भृतानामन्ववेक्षकः।।

(शां०, अ० ५७, श्लोक १२)

राजा दूसरे के धन का अपहरण न करे, ऋण या जो धन परस्पर देय हो उसे समय पर दिलाये, अरक्षितों का रक्षक बने तथा सुरक्षितों का पर्यवेक्षक।

२९

कच्चित्ते वणिजो राष्ट्रे नोद्विजन्ति करार्दिताः।
क्रीणन्तो बहुनाल्पेन कान्तारकृतविश्रमाः।।

(शां०, अ० ८९, श्लोक २३)

हे राजन् ! तुम्हारे राज्य में व्यापारी कठोर करों से दुःखी तो नहीं है ? कहीं वे अल्प-सन्तोषी होकर वन मे तो नही रहने लगे ? . . .

३०

कच्चित् कृषिकरा राष्ट्रं न जहत्यतिपीडिताः।
ये वहन्ति धुरं राज्ञां ते भरन्तीतरानपि।।

(शां०, अ० ८९, श्लोक २४)

कही किसान, जो राजतंत्र का परिवहन करते है तथा दूसरों का भी पालन-पोषण करते है, अत्यन्त पीड़ित होकर तुम्हारे राष्ट्र को छोड़ तो नही रहे ? . . .

३१

इतो दत्तेन जीवन्ति देवाः पितृगणास्तथा।
मानुषोरगरक्षांसि वयांसि पशवस्तथा।।
एषा ते राष्ट्रवृत्तिश्च राज्ञां गुप्तिश्च भारत।

(शां०, अ० ८९, श्लोक २५)

देव तथा पितर, मनुष्य, उरग, राक्षस तथा पशु सभी जो उनके दिये पर जीवित है, हे भारत, उनकी रक्षा ही तुम्हारी राष्ट्रवृत्ति है, और यही राजाओं का संरक्षण है।

३२

राज्ञा हि पूजितो धर्मस्ततः सर्वत्र पूज्यते।
यद् यदा चरते राजा तत् प्रजानां स्म रोचते॥
(शां०, अ० ७५, श्लोक ४)

जब राजा धर्म की पूजा करता है तो उसकी सर्वत्र पूजा होती है। राजा जैसा आचरण करता है प्रजा उसीका अनुकरण करती है।

३३

यं हि धर्मं चरन्तीह प्रजा राज्ञा सुरक्षिताः।
चतुर्थं तस्य धर्मस्य राजा भारत विंदति॥
(शां०, अ० ७५, श्लोक १०)

हे भारत, राजा के द्वारा सुरक्षित प्रजा जिस धर्म का आचरण करती है उसका चतुर्थ भाग राजा को प्राप्त होता है।

३४

यदधीते यद्ददाति यज्जुहोति यदर्चति।
राजा चतुर्थभाक् तस्य प्रजा धर्मेण पालयन्॥
(शां०, अ० ७५, श्लोक ७)

जो राजा धर्म से प्रजा का पालन करता है, प्रजा के द्वारा किये जानेवाले अध्ययन, दान, हवन तथा अर्चन आदि सभी सुकृतो के चतुर्थांश का भागी होता है।

३५

पापं कुर्वन्ति यत्किंचित् प्रजा राज्ञा ह्यरक्षिताः।
चतुर्थं तस्य पापस्य राजा विन्दति भारत॥
(अनु०, अ० ६१, श्लोक ३४)

राजा के द्वारा अरक्षित प्रजा जो पापाचरण करती है, उसका चौथा भाग राजा को प्राप्त होता है।

३६

यच्चादाय तदाज्ञप्तं भीतं दत्तं सुदारुणम्।
यजेद् राजा न तं यज्ञं प्रशंसन्त्यस्य साधवः॥

(अनु०, अ० ६१, श्लोक २२)

जो राजा प्रजा द्वारा दिये गए धन को लेकर भी राजकर्मचारियों को धनापहरण का आदेश देता है, तथा जो कठोर आज्ञा तथा भय से यज्ञ के निमित्त धन-संग्रह करता है, ऐसे यज्ञ की साधु लोग प्रशंसा नहीं करते।

३७

क्रोशन्त्यो यस्य वै राष्ट्राद्ध्रियन्ते तरसा स्त्रियः।
क्रोशतां पतिपुत्राणां मृतोऽसौ न च जीवति॥

(अनु०, अ० ६१, श्लोक ३१)

जिसके राष्ट्र से विलाप करती हुई स्त्रियां बलपूर्वक अपहरण कर ली जाती हैं, पति और पुत्र रोते रह जाते है, उस राजा को मृत समझना चाहिए। वह जीवित नहीं है।

३८

धिक् तस्य जीवितं राज्ञो राष्ट्रे यस्यावसीदति।
द्विजोऽन्यो वा मनुष्योऽपि शिविराह वचो यथा॥

(अनु०, अ० ६१, श्लोक २९)

जैसा कि राजा शिवि ने कहा है—"उस राजा के जीवन को धिक्कार है, जिसके राष्ट्र में द्विज अथवा अन्य व्यक्ति दुःखी हैं।"

३९

यस्य स्म विषये राज्ञः स्नातकः सीदति क्षुधा।
अवृद्धिमेति तद्राष्ट्रं विन्दते सहराजकम्॥

(अनु०, अ० ६१, श्लोक ३०)

जिस राजा के राज्य में स्नातक क्षुधा से पीड़ित है, वह राष्ट्र वृद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। उसमें अराजकता फैल जाती है।

४०

न हि राज्ञा प्रमादो वै कर्तव्यो मित्ररक्षणे।
प्रमादिनं हि राजानं लोकाः परिभवन्त्युत॥

(शां०, अ० ८०, श्लोक ७)

राजा को अपने मित्र की रक्षा करने में कभी आलस्य नहीं करना चाहिए। आलसी राजा को लोग दबा लेते है।

४१

क्षत्रियस्य प्रमत्तस्य दोषः संजायते महान्।
अधर्माः सम्प्रवर्धन्ते प्रजा संकरकारकाः॥

(शां०, अ० ९०, श्लोक ३६)

जब क्षत्रिय, अर्थात् राजा, लापरवाह अथवा विलासी हो जाता है तो अनेक महान् दोष खड़े हो जाते है। प्रजा में अव्यवस्था उत्पन्न करनेवाले अनेक प्रकार के अधर्म बढ़ने लगते हैं।

४२

राज्ञो यदा जनपदे बहवो राजपूरुषाः।
अनयेनोपवर्तन्ते तद् राज्ञः किल्बिषं महत्॥

(शां०, अ० ९१, श्लोक २४)

जिस राजा के जनपद मे राजपुरुष अन्याय करने लगते है, वह राजा महान् पाप का भागी होता है।

४३

रक्षाधिकरणं युद्धं तथा धर्मानुशासनम्।
मंत्रचिन्ता सुखं काले पंचभिर्वर्द्धते मही।।

(शां०, अ० ९३, श्लोक २४)

रक्षा के साधन, युद्ध, धर्म-शिक्षा, मंत्र-चिन्तन तथा समय पर सुख-प्रदान—इन पाच बातो से राज्य की उन्नति होती है।

४४

राज्ञा सप्तैव रक्ष्याणि तानि चैव निबोध मे।
आत्मामात्याश्च कोशाश्च दंडो मित्राणि चैव हि।।

(शां०, अ० ६८, श्लोक ६४)

तथा जानपदाश्चैव पुरं च कुरुनन्दन।।

(शां०, अ० ६९, श्लोक ६५)

हे कुरुनन्दन, राजा को जिन सात तत्वों की रक्षा करनी चाहिए, उन्हें सुनो—१. आत्मा, २. अमात्य, ३. कोष, ४. दण्ड, ५. मित्र, ६. नागरिक और ७. दुर्ग।

४५

आत्मानं सर्वतो रक्षन् राजन् रक्षस्व मेदिनीम्।
आत्ममूलमिदं सर्वमाहुर्वै विदुषो जनाः।।

(शां०, अ० ८९, श्लोक १३)

हे राजन्, सब प्रकार से आत्मा की रक्षा करते हुए पृथ्वी की रक्षा करो। मनीषियों का कथन है कि सबका मूल आत्मा है।

४६

अमात्यांँश्चातिशूरांँश्च ब्राह्मणांँश्च परिश्रुतान् ।
एतान् सहायांल्लप्सेथाः सर्वस्वापत्सु भारत ।।

(शां०, अ० ८३, श्लोक ३)

राजा सभी संकटों में निम्नलिखित व्यक्तियों को सहायक के रूप में प्राप्त करे—मंत्री, अतिशूर, ब्राह्मण तथा विद्वान् ।

४७

सहायान् सततं कुर्याद्राजा भूतिपरिष्कृतः ।
तैश्च तुल्यो भवेद्भोगैश्छत्रमात्राज्ञयाधिकः ।।

(शां०, अ० ५७, श्लोक २५)

ऐश्वर्य-सम्पन्न राजा ऐसे लोगों को अपना सहायक बनाये, आमोद-प्रमोदों में उनको अपने समकक्ष रखे; केवल आज्ञा और छत्र का भेद रहने दे ।

४८

मेधावी स्मृतिमान् दक्षः प्रकृत्या चानृशंस्यवान् ।
यो मानितोऽमानितो वा न च दुष्येत् कदाचन ।।
गृहे वसेदमात्यस्ते स स्यात्परमपूजितः ।।

(शां०, अ० ८०, श्लोक २२-२३)

जो मेधावी, स्मृतिमान्, दक्ष, प्रकृति से दयालु, मान तथा अपमान में समदृष्टि हो तथा जो प्रवासी न हो और अत्यन्त सम्मानित हो, ऐसा व्यक्ति तुम्हारा मंत्री होना चाहिए ।

४९

पर्याप्तवचनान् वीरान् प्रतिपत्तिविशारदान्।
कुलीनान् सत्वसम्पन्नानिंगितज्ञाननिष्ठुरान्॥
देशकाल - विधानज्ञान् भर्तृकार्यहितैषिणः।
नित्यमर्थेषु सर्वेषु राजन् कुर्वीत मन्त्रिणः॥
(शां०, अ० ८३, श्लोक २३-२४)

हे राजन्, जो बोलने में कुशल, शौर्यसम्पन्न, प्रत्येक बात को ठीक-ठीक समझने में निपुण, कुलीन, सत्त्वयुक्त, संकेत समझनेवाले, निष्ठुरता से रहित, देश और काल के विधान को जाननेवाले तथा स्वामी के कार्य एवं हित की सिद्धि चाहनेवाले हों, ऐसे पुरुषों को सदा सभी प्रयोजनों की सिद्धि के लिए मंत्री बनाना चाहिए।

५०

एवमल्पश्रुतो मंत्री कल्याणाभिजनोप्युत।
धर्मार्थकामसंयुक्तो नालं मंत्रं परीक्षितुम्॥
(शां०, अ० ८३, श्लोक २६)

इसी प्रकार जो मंत्री कुलीन है किन्तु शास्त्रों का ज्ञाता नही है वह धर्म, अर्थ तथा काम के विषय में मंत्र (रहस्य) की परीक्षा नही कर सकता।

५१

यो वाप्यस्थिरसंकल्पो बुद्धिमानागतागमः।
उपायज्ञोऽपि नालं स कर्म प्रापयितुं चिरम्॥
(शां०, अ० ८३, श्लोक २८)

जो व्यक्ति बुद्धिमान् है, शास्त्रों का ज्ञाता है, सफलता के उपाय जानता है फिर भी अस्थिर मनवाला है, वह लम्बा समय बीतने पर भी काम को पूरा नहीं कर सकता।

५२

तथैवानभिजातोऽपि काममस्तु बहुश्रुतः।
अनायक इवाचक्षुर्मुह्यत्यणुषु कर्मसु॥
(शां०, अ० ८३, श्लोक २७)

इसी प्रकार जो व्यक्ति अभिजात अर्थात् कुलीन नही है, वह बहुश्रुत होने पर भी छोटी-छोटी बातों मे घबरा जाता है। उसकी दशा नायकहीन अंधे व्यक्ति के समान होती है।

५३

शूरान् भक्तानसंहार्यान् कुले जातानरोगिणः।
विद्याविदो लोकविदः परलोकान्ववेक्षकान्॥
(शां०, अ० ५७, श्लोक २३)

शूर, भक्त, जो कभी विपरीत न जा सके, कुलीन, स्वस्थ, विद्वान्, लोकविद्, परलोक का भय माननेवाले—

५४

ह्रीनिषेवास्तथा दान्ताः सत्यार्जवसमन्विताः।
शक्ताः कथयितुं सम्यक् ते तव स्युः सभासदः॥
(शां०, अ० ८३, श्लोक २)

बुरे कार्यो से लज्जित होनेवाले, उदार, सच्चे, सरल, सच्ची बात को अच्छी तरह उपस्थित करने की सामर्थ्य रखनेवाले व्यक्ति, हे युधिष्ठिर, तुम्हारे सभासद् होने चाहिए।

५५

चतुर्विधानि मित्राणि राज्ञां राजन् भवन्त्युत।
हार्यो भजमानश्च सहजः कृत्रिमस्तथा॥
(शां०, अ० ८०, श्लोक ३)

धर्मात्मा पंचमश्चापि मित्रं नैकस्य न द्वयोः।
यतो धर्मस्ततो वा स्याद् धर्मस्थो वा ततो भवेत्॥
(शां०, अ० ८०, श्लोक ८१)

हे राजन्, राजाओ के मित्र चार प्रकार के होते है—१. सहार्थ, अर्थात् स्वार्थ की समानता के कारण बननेवाले मित्र, २ भजमान अर्थात् सेवक, ३. सहज अर्थात् स्वाभाविक, तथा ४ कृत्रिम अर्थात् बनावटी। पांचवा मित्र धर्मात्मा होता है। अन्यायनिष्ठ होने पर किसी पक्ष का मित्र नहीं होकर दोनों का मित्र बनता है। या तो जिधर धर्म होता है, वह उधर जाता है या धर्मनिष्ठ उसकी ओर झुक जाता है।

५६

चतुर्णां मध्यमौ श्रेष्ठौ नित्यं शंक्यौ तथापरौ।
सर्वे नित्यं शंकितव्याः प्रत्यक्षं कार्यमात्मनः॥
(शां०, अ० ८०, श्लोक ६)

उपर्युक्त चार प्रकार के मित्रों मे बीच के दो—अर्थात् भजमान और सहज—अच्छे माने गए है। अन्य दो—अर्थात् सहार्थ और कृत्रिम—से सदा सशंक रहना चाहिए। यों साधारणतः सभी से शंकित रहना चाहिए और जो कार्य सामने हो उसे सिद्ध कर लेना चाहिए।

५७

कुलीनः शीलसम्पन्नो वाग्मी दक्षः प्रियंवदः।
यथोक्तवादी स्मृतिमान् दूतः स्यात् सप्तभिर्गुणैः॥
(शां०, अ० ८५, श्लोक २८)

राजदूत में सात गुण होने चाहिए—कुलीनता, सदाचार, वाग्मिता, दक्षता, मधुर भाषण, यथोक्तवादिता तथा स्मृतिमान् होना।

५८

परस्परज्ञाः संहृष्टास्त्यक्तप्राणाः सुनिश्चिताः।
अपि पंचाशतं शूरा निघ्नन्ति परवाहिनीम्॥

(शां०, अ० १०२, श्लोक २०)

जो एक-दूसरे को अच्छी तरह जानते है, प्रसन्न है, प्राणों का मोह छोड़ चुके है तथा जिनका लक्ष्य निश्चित है, ऐसे पचास योद्धा भी शत्रु की विशाल सेना को समाप्त कर देते हैं।

५९

वश्या नेया विधेयाश्च न च संघर्षशीलिनः।
विषये दानरुचयो नरा यस्य स पार्थिवः॥

(शां०, अ० ५७, श्लोक ३६)

जिसके राज्य में प्रजा-जन वश में रहनेवाले, आज्ञाकारी, राजनियमों का पालन करनेवाले होते है, परस्पर संघर्ष नही करते तथा उदार होते हैं, वही सच्चा राजा है।

६०

दुर्गेषु च महाराज षट्सु ये शास्त्रनिश्चिताः।
सर्वदुर्गेषु मन्यन्ते नरदुर्गं सुदुस्तरम्॥

(शां०, अ० ५६, श्लोक ३५)

हे राजन्, शास्त्रों में जो छः प्रकार के दुर्ग बताये गए हैं, उन सबमें पुरुष-दुर्ग दृढ़तम और दुर्जेय है।

६१

दण्डधारणमुग्रत्वं प्रजानां परिपालनम्।
एतानि राज्ञां कर्माणि सुकृतानि विशाम्पते।।
एषां ज्यायस्तु कौन्तेय दण्डधारणमुच्यते।

(शां०, अ० २३, श्लोक ११-१३)

हे राजन्, दण्ड-संचालन, कठोरता और प्रजा का पालन—राजाओं के ये तीन कर्म हैं। इन सबमें दण्ड-संचालन मुख्य है।

६२

यथा पुत्रास्तथा पौरा द्रष्टव्यास्ते न संशयः।
भक्तिश्चैषां न कर्तव्या व्यवहारे प्रदर्शिते।।

(शां०, अ० ६९, श्लोक २७)

हे राजन्! प्रजा को पुत्र के समान देखना चाहिए। अभियोगों का निर्णय देते समय उनमें किसी प्रकार का भेद न करना चाहिए।

६३

अगूढविभवा यस्य पौरा राष्ट्रनिवासिनः।
नयापनयवेत्तारः स राजा राजसत्तमः।।

(शां०, अ० ५७, श्लोक ३४)

जिस राजा के नागरिक अपनी सम्पत्ति को नहीं छिपाते तथा न्याय, नीति और अनीति को जानते हैं, वही राजा श्रेष्ठ है।

६४

परिहासश्च भृत्यैस्ते नात्यर्थं वदतां वर।
कर्तव्यो राजशार्दूल दोषमत्र हि मे शृणु॥

(शां०, अ० ५६, श्लोक ४८)

वाग्मियों में श्रेष्ठ हे राजन्! तुम्हें भृत्यो के साथ कभी परिहास नहीं करना चाहिए। इसमे जो दोष है उसे सुनो—

६५

अवमन्यंति भर्तारं संघर्षादुपजीविनः।
स्वे स्थाने न च तिष्ठंति लंघयंति च तद्वचः॥

(शां०, अ० ५६, श्लोक ४९)

परिहास में संघर्ष उपस्थित होने पर अनुजीवी लोग स्वामी का अपमान कर देते है, अपनी मर्यादा तथा कर्त्तव्य का पालन नही करते तथा उसके आदेशों का तिरस्कार करने लगते है।

६६

अर्थमूलोऽपि हिंसा च कुरुते स्वयमात्मनः।
करैरशास्त्रदृष्टैर्हि मोहात्संपीडयन् प्रजाः॥

(शां०, अ० ७१, श्लोक १५)

जो राजा शास्त्रों के विरुद्ध मनमाने करों द्वारा प्रजा का उत्पीड़न करता है, वह धनलोलुप होकर स्वयं अपनी ही हिंसा करता है।

६७

कामकारेण दंडस्तु यः कुर्यादविचक्षणः।
स इहाकीर्तिसंयुक्तो मृतो नरकमृच्छति॥

(शां०, अ० ८५, श्लोक २४)

जो अविवेकी शासक अपनी इच्छानुसार मनमाना दण्ड देता है वह इस लोक में अपयश को पाता है और मरकर नरक को जाता है।

६८

आभ्यंतरं भयं रक्ष्यमसारं बाह्यतो भयम्।
आभ्यंतरं भयं राजन् सद्यो मूलानि कृन्तति॥

(शां०, अ० १०७, श्लोक २८)

हे राजन्! मनुष्य को आन्तरिक भय से बचना चाहिए। बाह्य भय का विशेष महत्त्व नही है, आन्तरिक भय तुरन्त ही जड़े उखाड़ देता है।

६९

संनिपातो न मंतव्यः शक्ये सति कथंचन।
सांत्वभेदप्रदानानां युद्धमुत्तरमुच्यते॥

(शां०, अ० १०२, श्लोक २२)

जहां तक सम्भव हो, युद्ध की बात मन मे न लानी चाहिए। जब साम, दान और भेद तीनो उपाय असफल हो जायं तभी युद्ध की बात सोचनी चाहिए।

७०

विजित्य क्षममाणस्य यशो राज्ञो विवर्धते।
महापराधे ह्यप्यस्मिन् विश्वसन्त्यपि शत्रवः॥

(शां०, अ० १०२, श्लोक ३०)

जो राजा शत्रु को जीतकर क्षमा कर देता है, उसका यश बढ़ता है। शत्रु भयंकर अपराध करने पर भी उसपर विश्वास कर लेते हैं।

७१

उच्छिद्यते धर्मवृत्तमधर्मो वर्तते महान्।
भयमाहुर्दिवारात्रं यदा पापो न वार्यते॥

(शां०, अ० ९०, श्लोक ८)

जब पाप का दमन नही किया जाता है तो धर्म और व्रतो का उच्छेद हो जाता है, अधर्म बढ़ जाता है और दिन-रात भय छाया रहता है।

७२

नैव भार्या न पशवो न क्षेत्रं न निवेशनम्।
संदृश्येत मनुष्याणां यदा पापबलं भवेत्॥

(शां०, अ० ९०, श्लोक १०)

यदि पाप की शक्ति बढ़ जाती है तो मनुष्यो के पास कुछ भी नही रहता; न पत्नी, न पशु, न खेत, न घर—सबकुछ नष्ट हो जाता है।

७३

यः कश्चिज्जनयेदर्थं राज्ञा रक्ष्यः सदा नरः।

(शां०, अ० ८२, श्लोक १)

जो व्यक्ति धन कमाकर देता हो, राजा को उसकी सदा रक्षा करनी चाहिए।

७४

बहुमित्रांश्च राजानो बह्वमित्रास्तथैव च।

(शां०, अ० ८२, श्लोक २५)

राजाओं के मित्र भी बहुत होते हैं और शत्रु भी बहुत होते है।

७५

मा स्म तात रणे स्थित्वा भुंजीथा दुर्बलं जनम्।
मा त्वां दुर्बलचक्षूंषि दहन्त्वग्निरिवाश्रयम्॥

(शां०, अ० ९१, श्लोक १९)

हे तात, युद्ध में कभी दुर्बल पर प्रहार मत करना ! जिस प्रकार अग्नि अपने आश्रय को जला डालती है, उसी प्रकार दुर्बल की आंखे तुम्हें न जलाने पायें।

७६

दुर्बलस्य च यच्चक्षुर्मुनेराशीविषस्य
अविषह्यतमं मन्ये मा स्म दुर्बलमासदः॥

दुर्बल की आख, मुनि की आख तथा सांप की आंख असह्य होता है। अतः दुर्बल को कष्ट मत दो।

७७

यदि ते तादृशो राष्ट्रे विद्वान् सीदेत् क्षुधा द्विजः।
भ्रूणहत्यां च गच्छेथाः कृत्वा पापमिवोत्तमम्॥

(अनु०, अ० ७१, श्लोक २८)

(हे राजन्) यदि तुम्हारे राष्ट्र में कोई विद्वान् ब्राह्मण भूख से कष्ट पा रहा हो तो तुम्हें भ्रूण-हत्या का पाप लगेगा, और कोई बड़ा भारी पाप करने से मनुष्य की जो दुर्गति होती है, वही तुम्हारी भी होगी।

: १४ :

रामराज्य

१

**विधवा यस्य विषये नानाथाः काश्चनाभवन्।
सदैवासीत् पितृसमो रामो राज्यं यदन्वगात्॥
कालवर्षी च पर्जन्यः सस्यानि समपादयत्।
नित्यं सुभिक्षमेवासीद् रामे राज्यं प्रशासति॥**

(शां०, अ० २९, श्लोक ५२-५३)

राम-राज्य में कोई भी स्त्री अनाथ या विधवा नही थी। रामचन्द्र ने जबतक राज्य का शासन किया, तबतक वे अपनी प्रजा के लिए सदा ही पिता के समान कृपालु बने रहे।

वर्षा समय पर होती थी, खेती फूलती-फलती थी। राम के शासन में सदा सुकाल ही रहता था।

२

**प्राणिनो नाप्सु मज्जन्ति नान्यथा पावकोऽदहत्।
रुजाभयं न तत्रासीद् रामे राज्यं प्रशासति॥
आसन् वर्षसहस्रिण्यस्तथा वर्षसहस्रकाः।
अरोगाः सर्वसिद्धार्था रामे राज्यं प्रशासति॥**

(शां०, अ० २९, श्लोक ५४-५५)

राम के राज्य में न कोई पानी में डूबता था, न आग में जलता था, और न किसीको रोग का भय था।

उन दिनों पुरुष तथा स्त्रियां हजार वर्षों तक जीते थे। किसी को कोई रोग नहीं होता था, सभी के मनोरथ सिद्ध होते थे

३

नान्योऽन्येन विवादोऽभूत् स्त्रीणामपि कुतो नृणाम्।
धर्मनित्याः प्रजाश्चासन् रामे राज्यं प्रशासति॥
सन्तुष्टाः सर्वसिद्धार्था निर्भयाः स्वैरचारिणः।
नराः सत्यव्रताश्चासन् रामे राज्यं प्रशासति॥

(शां०, अ० २९, श्लोक ५६-५७)

स्त्रियों में भी परस्पर विवाद नही होता था, पुरुषों की तो बात ही क्या है! उस समय समस्त प्रजा सदा धर्म में तत्पर रहती थी।

उस समय सभी मनुष्य संतुष्ट, पूर्णकाम, निभय, स्वाधीन और सत्य-व्रती थे।

४

नित्यपुष्पफलाश्चैव पादपा निरुपद्रवाः।
सर्वा द्रोणदुघा गावो रामे राज्यं प्रशासति॥

(शां०, अ० २९, श्लोक ५८)

सभी वृक्ष बिना किसी विघ्न-बाधा के फलते-फूलते थे और समस्त गौएं मटका भरकर दूध देती थी।

: १५ :

अर्थ-नीति

१

अर्थाद्धर्मश्च कामश्च स्वर्गश्चैव नराधिप।
प्राणयात्रापि लोकस्य विना ह्यर्थं न सिद्ध्यति॥

(शां०, अ० ८, श्लोक १७)

हे राजन्, अर्थ से ही धर्म का आराधन होता है। अर्थ से ही काम-भोगों की प्राप्ति होती है और अर्थ से ही स्वर्ग मिलता है। बिना अर्थ के प्राण-यात्रा भी नहीं हो सकती।

२

धर्मः कामश्च स्वर्गश्च हर्षः क्रोधः श्रुतं दमः।
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते नराधिप।।

(शां०, अ० ८, श्लोक २१)

हे राजन्! धर्म, काम भोग, स्वर्ग, हर्ष, क्रोध, शास्त्रों का ज्ञान तथा इन्द्रियों का दमन—ये सब अर्थ से ही प्रवृत्त होते है।

३

यं त्विमं धर्ममित्याहुर्धनादेष प्रवर्तते।

(शां०, अ० ८, श्लोक १२)

सर्वथा धनमाहार्यं यष्टव्यं च यत्नतः।।

(शां०, अ० ८, श्लोक २७)

संसार में जिसे धर्म कहते है, उसका आराधन भी धन से ही होता है, अतः सभी उपायों से धन-संग्रह करना चाहिए। तत्पश्चात् यत्नपूर्वक यज्ञ करना चाहिए।

४

न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः।
अर्थतस्तु निबध्यन्ते मित्राणि रिपवस्तथा।।

(शां०, अ० १३८, श्लोक ११०)

न कोई किसीका मित्र है और न कोई किसीका शत्रु। शत्रु और मित्र दोनों धन से ही बनते हैं।

५

सर्वं धनवता प्राप्यं सर्वं तरति कोशवान्।।

(शां०, अ० १३०, श्लोक ४९)

धनवान् सबकुछ प्राप्त कर सकता है। जिसके पास कोष है वह सभी संकटों को पार कर लेता है।

६

कृत्स्नं तदेव तच्छ्रेयो यदप्याददतेऽन्यतः।
न पश्यामोऽनपकृतं धनं किंचित् क्वचिद्वयम्॥
(शां०, अ० ८, श्लोक ३०)

यद्यपि सारा धन दूसरे से ही ग्रहण किया जाता है फिर भी वह श्रेय अर्थात् मगल ही है। दुनिया मे ऐसा कोई धन नहीं है जो अपकार के बिना प्राप्त हुआ हो।

७

अनर्थो ब्राह्मणस्यैष यद् वित्तनिचयो महान्।
श्रिया ह्यभीक्ष्णं संवासो दर्पयेत् संप्रमोहयेत्॥
(अनु०, अ० ६१, श्लोक १९)

यदि ब्राह्मण के पास अधिक धन संचित हो जाय तो वह अनर्थ का कारण बनता है, क्योंकि लक्ष्मी का निरन्तर सहवास उसे मोह और दर्प में डाल देता है।

८

दानमेव हि सर्वत्र सांत्वेनानभिजल्पितम्।
न प्रीणयति भूतानि निर्व्यञ्जनमिवाशनम्॥
(शां०, अ० ८४, श्लोक ७)

दान भी जब बिना सांत्वना, अर्थात् बिना मीठी वाणी के, दिया जाता है तो वह बिना मसाले के भोजन के समान तृप्ति नहीं देता।

: १६ :

दण्ड-नीति

१

दण्डेन नीयते चेदं दण्डं नयति वा पुनः।
दण्डनीतिरिति ख्याता त्रींल्लोकानभिवर्तते॥

(शां०, अ० ५८, श्लोक ७८)

जो दण्ड के द्वारा चलाई जाती है, या जो दण्ड को चलाती है, उसे दण्ड-नीति कहते है। यह तीनों लोकों को आक्रान्त किये हुए है।

२

नादण्डः क्षत्रियो भाति नादण्डो भूमिमश्नुते।
नादण्डस्य प्रजा राज्ञः सुखं विंदन्ति भारत॥

(शां०, अ० १४, श्लोक १४)

हे भारत, बिना दण्ड के क्षत्रिय शोभा नही देता, बिना दण्ड के धन प्राप्त नहीं होता, दण्ड-हीन राजा की प्रजा भी सुखी नहीं रह सकती।

३

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः।
दण्डस्यैव भयादेते मनुष्या वर्त्मनि स्थिताः॥

(शां०, अ० १५, श्लोक १२)

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा भिक्षुक, सभी दण्ड के ही भय से अपनी-अपनी चर्या में स्थिर हैं।

४

दण्डः संरक्षते धर्मं तथैवार्थं जनाधिप।
कामं संरक्षते दण्डस्त्रिवर्गो दण्ड उच्यते॥

(शां०, अ० १५, श्लोक २)

हे राजन्, दण्ड धर्म की रक्षा करता है, दण्ड ही अर्थ की रक्षा करता है तथा दण्ड से ही काम की रक्षा होती है। वास्तव में दण्ड ही त्रिवर्ग है।

५

राजदण्ड - भयादेके पापाः पापं न कुर्वते।
यमदण्ड - भयादेके परलोक - भयादपि॥

(शां०, अ० १५, श्लोक ५)

कुछ पापी राजदण्ड के भय से पाप नहीं करते, कुछ यम दण्ड के भय से और कुछ परलोक के भय से।

६

दण्डश्चेन्न भवेल्लोके विनश्येयुरिमाः प्रजाः।
जले मत्स्यानिवाभक्ष्यन् दुर्बलान् बलवत्तराः॥

(शां०, अ० १५, श्लोक ३०)

यदि संसार में दण्ड न हो तो प्रजा नष्ट हो जाय। जिस प्रकार पानी में बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को खा जाती है, इसी प्रकार बलवान् दुर्बलों को खा जाय।

७

य एव देवा हंतारस्ताँल्लोकोऽर्चयते भृशम्।
हन्ता रुद्रस्तथास्कन्दः शक्रोऽग्निर्वरुणो यमः॥
हन्ता कालस्तथा वायुर्मृत्युर्वैश्रवणो रविः।
वसवो मरुतः साध्या विश्वेदेवाश्च भारत॥
एतान् देवान् नमस्यंति प्रताप-प्रणता जनाः।
न ब्रह्माणं न धातारं न पूषाणं कथंचन॥

(शां०, अ० १५, श्लोक १६-१८)

दुनिया उन्हीं देवताओं की अधिक पूजा करती है जो हिसक है। हे भारत, रुद्र, कार्तिकेय, इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम, काल, वायु, मृत्यु, वैश्रवण, सूर्य, वसु, मरुत, साध्य तथा विश्वेदेव सभी मारनेवाले है। लोग प्रताप के सामने झुककर इन देवों को नमस्कार करते है। ब्रह्मा, धाता तथा पूषा को कभी नही।

८

नाभीतो यजते राजन्नाभीतो दातुमिच्छति।
नाभीतः पुरुषः कश्चित्समये स्थातुमिच्छति॥

(शां०, अ० १५, श्लोक १३)

हे राजन्, बिना भय के कोई यज्ञ नहीं करता है और न बिना भय के कोई दान देना चाहता है। बिना भय के कोई मनुष्य अपनी मर्यादा में नहीं रहना चाहता।

९

अंधं तम इवेदं स्यान्न प्राज्ञायत किंचन।
दंडश्चेन्न भवेल्लोके विभजन् साध्वसाधुभिः॥

(शां०, अ० १५, श्लोक ३२)

यदि संसार में भले और बुरे का विवेक करनेवाला दण्ड न हो तो सर्वत्र अंधेरा छा जाय, कुछ भी न सूझे।

१०

दंडः शास्ति प्रजाः सर्वा दंड एवाभिरक्षति।
दंडः सुप्तेषु जागर्ति दंडं धर्मं विदुर्बुधाः॥

(शां०, अ० १५, श्लोक २)

दण्ड प्रजा पर शासन करता है, दण्ड ही प्रजा की रक्षा करता है। जब सब आराम से सोते है, तो दण्ड जागता रहता है। विद्वान् दण्ड को ही धर्म मानते है।

११

यथा हि रश्मयोऽश्वस्य द्विरदस्यांकुशो यथा।
नरेन्द्रधर्मो लोकस्य तथा प्रग्रहणं स्मृतम्॥

(शां०, अ० ५६, श्लोक ५)

जिस प्रकार लगाम घोड़े को तथा अंकुश हाथी को वश में रखता है, उसी प्रकार राजधर्म जनता को मर्यादा में रखता है।

१२

यानि मिथ्याभिशप्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदताम्।
तानि पुत्रान् पशून् घ्नंति तेषां मिथ्याभिशंसनात्॥

(शां०, अ० ९१, श्लोक २०)

अनुचित रूप से दंडित लोगों के जो आंसू गिरते हैं वे अनुचित दंड के कारण शासकों के पुत्रों और पशुओं का नाश कर देते हैं।

: १७ :

अध्यात्म

१

अव्यक्तस्येह दिक्ज्ञाने नास्ति तुल्यं निदर्शनम्।
यत्र नास्ति पदन्यासः कस्तं विषयमाप्नुयात्॥

(शां०, अ० २०५, श्लोक १८)

अव्यक्त का मार्ग-दर्शन करने के लिए कोई उदाहरण नहीं है। जहां पर पैर नहीं रखे जा सकते, उस देश में कौन पहुंच सकता है!

२

नान्यत्र विद्यातपसो नान्यत्रेन्द्रिय-निग्रहात्।
नान्यत्र सर्वसंत्यागात्सिद्धिं विंदति कश्चन॥

(शां०, अ० २३९, श्लोक ५)

मनुष्य ज्ञान, तप, इन्द्रिय-निग्रह तथा त्याग को छोड़कर सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता।

३

अलाभे सति वा लाभे समदर्शी महातपाः।
न जिजीविषुवत् किंचिन्न मुमूर्षुवदाचरन्॥

(शां०, अ० ९, श्लोक २४)

(समदर्शी मनुष्य) लाभ तथा अलाभ दोनों में समदर्शी है, महातपस्वी है, न कुछ जीने की इच्छा से करता है और न मरने की—

४

न शोचन्न प्रहृष्यंश्च तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः॥
(शां०, अ० ९, श्लोक १४)

न तो शोक करता है और न हर्षित होता है, निन्दा तथा स्तुति में समान है। न किसी प्रकार की आशा करता है और न किसी से ममत्व, सभी द्वन्द्वों से मुक्त है तथा परिग्रह-रहित है—

५

न चाप्यवहसन् कञ्चिन्न कुर्वन् भृकुटीः क्वचित्।
प्रसन्नवदनो नित्यं सर्वेन्द्रिय - सुसंयतः॥
(शां०, अ० ९, श्लोक १७)

न तो किसीका उपहास करता है, और न किसीपर भृकुटी तानता है, नित्य प्रसन्नवदन रहता है तथा सभी इन्द्रियों को वश में रखता है—

६

जीवितं मरणं चैव नाभिनन्दन्न च द्विषन्।
वास्यैकं तक्षतो गात्रं चन्दनेनैकमुक्षतः।
नाकल्याणं न कल्याणं चिन्तयन्नुभयोस्तयो॥
(शां०, अ० ९, श्लोक २५)

न जीवनका अभिनन्दन करता है और न मृत्यु से द्वेष करता है। कोई आदमी कुल्हाड़ी से अंगों का छेदन कर रहा है और दूसरा चन्दन का लेप कर रहा हो, तो वह दोनों में से किसीका भी न बुरा चाहता है और न भला।

७

मनसा क्लिश्यमानस्तु समाधानं च कारयेत्।
न निर्वेदं मुनिर्गच्छेत्कुर्यादेवात्मनो हितम्॥

(शां०, अ० १९५, श्लोक १६)

मन में जब क्लेश उत्पन्न हो तो उनका समाधान कर ले। कभी उदास न हो और आत्महित-साधन मे ही लगा रहे।

८

ज्ञानेन निर्मलीकृत्य बुद्धिं बुद्ध्या मनस्तथा।
मनसा चेन्द्रियग्राममक्षरं प्रतिपद्यते॥

(शां०, अ० २०६, श्लोक २५)

ज्ञान के द्वारा बुद्धि को, बुद्धि के द्वारा मन को तथा मन के द्वारा इन्द्रिय-समूह को निर्मल बनाकर मनुष्य परम तत्त्व को प्राप्त करता है।

९

कल्याणगोचरं कृत्वा मनस्तृष्णां निगृह्य च।
कर्मसंततिमुत्सृज्य स्यान्निरालंबनः सुखी॥

(शां०, अ० १९, श्लोक २०)

मन को परम कल्याण की ओर लगाकर, तृष्णा का दमन करके और कर्म-परम्परा का परित्याग करके, मनुष्य परावलम्बन से मुक्त होकर सुखी बने।

१०

कामं कामयमानस्य यदा कामः समृध्यते।
अथैनमपरः कामस्तृष्णा विध्यति बाणवत्॥

(अनु०, अ० ९३, श्लोक ४३)

कामनाओं से अभिभूत मनुष्य की एक कामना पूरी होती है और दूसरी खड़ी हो जाती है। इस प्रकार तृष्णा उसे बाण के समान बेधती रहती है।

११

त तल्लोके द्रव्यमस्ति यल्लोकं प्रतिपूरयेत्।
समुद्रकल्पः पुरुषः न कदाचन पूर्यते॥

(अनु०, अ० ९३, श्लोक ४२)

संसार में ऐसा कोई धन नही है जो इच्छाओं को पूरा कर सके। मनुष्य समुद्र के समान होता है, जो कभी पूरा नहीं भरता।

१२

उत्पन्नस्य रुरोः शृंग वर्धमानस्य वर्धते।
प्रार्थना पुरुषस्येव तस्य मात्रा न विद्यते॥

(अनु०, अ० ९३, श्लोक ४१)

हरिण उत्पन्न होकर जैसे-जैसे बड़ा होता है, उसका सीग भी बढ़ता चला जाता है। इसी प्रकार मनुष्य की इच्छा भी उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है। उसकी कोई मर्यादा नही है।

१३

अहिंसा सत्यवचनमानृशंस्यं दमो घृणा।
एतत्तपो विदुर्धीरा न शरीरस्य शोषणम्॥

(शां०, अ० ७९, श्लोक १८)

अहिसा, सत्य वचन, आनृशंस्य अर्थात् हृदय की कोमलता, इन्द्रियों का दमन तथा पापों से घृणा—धीर पुरुषों ने इसीको तप कहा है। शरीर को सुखाना तप नहीं है।

१४

अनंत बत मे वित्तं यस्य मे नास्ति किंचन।
मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किंचन॥

(शां०, अ० १७, श्लोक १९)

जबकि मेरा कुछ नहीं है, अर्थात् मैने ममत्व को छोड़ दिया, तो संसार का अनन्त धन मेरा ही है। मिथिला में आग लग जाने पर भी मेरा कुछ नहीं जलता।

१५

आत्मापि चायं न मम सर्वापि पृथिवी मम।
यथा मम तथान्येषामिति पश्यन्न मुह्यति॥

(शां०, अ० २५, श्लोक १९)

यह आत्मा भी मेरी नही है और सारी पृथ्वी ही मेरी है। सबकुछ जैसे मेरा है, उसी प्रकार दूसरों का भी है। जो इस प्रकार सोचता है, वह व्याकुल नहीं होता।

१६

विमुक्तः सर्वसंगेभ्यो व्यतीत सर्ववागुराः।
न वशे कस्यचित्तिष्ठन् सधर्मा मातरिश्वनः॥

सभी संगों से मुक्त होकर, सभी बन्धनों को तोड़कर, किसीके अधीन न रहता हुआ मैं वायु के समान विचरण करता हूं।

१७

यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः॥

(शां०, अ० २८, श्लोक ३६)

जिस प्रकार समुद्र में एक काष्ठ दूसरे काष्ठ से मिल जाता है और मिलकर बिछुड़ जाता है, विश्व में प्राणियों का समागम भी इसी प्रकार है।

१८

सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम्।
न नित्यं लभते दुःखं न नित्यं लभते सुखम्॥

(शां०, अ० २५, श्लोक २३)

सुख के बाद दुःख आता है और दुःख के बाद सुख। किसीके पास सदा न दुःख रहता है और न सुख।

१९

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवनम्॥

(शां०, अ० २७, श्लोक ३०-३२)

सभी संग्रहों का अन्त क्षय है। समस्त उत्थानों का अन्त पतन है। संयोगों का अन्त वियोग है और जीवन का अन्त मृत्यु।

२०

द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युः त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।
ममेति च भवेन्मृत्युः न ममेति च शाश्वतम्॥

(शां०, अ० १३, श्लोक ४)

दो अक्षर मृत्यु हैं और तीन अक्षर शाश्वत ब्रह्म अर्थात् अमरत्व। 'मम' अर्थात् मेरा, यह मृत्यु है; और 'न मम' अर्थात् 'मेरा नहीं', यह अमरत्व है।

२१

शष्पाणीव विचिन्वन्तमन्यत्र गतमानसम्।
वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति॥

(शां०, अ० १७५, श्लोक १३)

भेड़ का बच्चा घास चरता रहता है, उसका ध्यान दूसरी ओर होता है। इतने में ही भेड़िया चुपचाप आकर उसे पकड़ ले जाता है। इसी प्रकार मनुष्य को मृत्यु भी अचानक पकड़कर ले जाती है।

२२

इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृताकृतम्।
एवमीहासुखासक्तं कृतान्तः कुरुते वशे॥

(शां०, अ० १७५, श्लोक २०)

इतना कर लिया, इतना करना शेष है, तथा और भी बहुत-सा किया हुआ या बिना किया पड़ा है। इसी प्रकार कामनाओं से अभिभूत लोगों को यमराज अपने वश में कर लेता है।

२३

अद्यैव कुरु यच्छ्रेयो मां त्वां कालोऽत्यगादयम्।
न हि प्रतीक्षतेमृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्॥

(शां०, अ० १७५, श्लोक १४)

जो उत्तम कार्य करना है उसे आज ही कर डालो, कहीं ऐसा न हो कि काल तुमपर हावी हो जाय। मृत्यु इस बात की प्रतीक्षा नहीं करती कि तुमने कोई काम पूरा किया है या नहीं किया।

२४

कश्चित्सुखे वर्तमानो दुःखस्य स्मर्तुमिच्छति।
कश्चिद्दुःखे वर्तमानः सुखस्य स्मर्तुमिच्छति॥

(शां०, अ० १७, श्लोक १५)

कोई सुख मे है तो वह दु:ख का स्मरण करता है, और कोई दुःख में है तो वह सुख को याद करता है।

२५

आत्मयाजी आत्मरतिरात्मक्रीडात्मसंशयः।
आत्मन्यग्निं समारोप्य त्यक्त्वा सर्वपरिग्रहान्॥

(शां०, अ० २४४, श्लोक २४)

जो आत्मा का ही यज्ञ अर्थात् उत्सर्ग करता है, आत्मा में ही रमण करता है, आत्मा मे ही क्रीडा करता है, आत्मा का ही आश्रय लेता है, आत्मा में ही अग्नि का आरोप करके समस्त परिग्रह का त्याग करता है, तथा—

२६

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्वा यः प्रव्रजेद्द्विजः।
लोकास्तेजोभयास्तस्य प्रेत्य चानंत्यमश्नुते॥

(शां०, अ० २४४, श्लोक २८)

—जो ब्राह्मण सभी प्राणियों को अभयदान देकर संन्यास अंगीकार करता है, वह दिव्य जीवन को प्राप्त होता है तथा अमर हो जाता है।

२७

यदा कर्मगुणैर्हीना बुद्धिर्मनसि वर्तते।
तदा प्रज्ञायते ब्रह्म ध्यानयोगसमाधिना॥

(अनु०, अ० १६७, श्लोक ४०)

जब कर्म और बुद्धि का मन के साथ समन्वय हो जाता है तभी ध्यान-योग के द्वारा ब्रह्म का ज्ञान होता है।

२८

जलविन्दुर्यथा लोलः पर्णस्थः सर्वतश्चलः।
एवमेवास्य चित्तं च भवति ध्यानवर्त्मनि॥

(शां०, अ० १९५, श्लोक १२)

जिस प्रकार चंचल पत्ते पर पड़ी हुई पानी की बूंद सर्वथा अस्थिर होती है, उसी प्रकार ध्यान-मार्ग में लगे हुए मुनि का चित्त भी डांवाडोल रहता है।

२९

यदा निर्गुणमाप्नोति ध्यानं मनसि पूर्वजम्।
तदा प्रज्ञायते ब्रह्म निकषं निकषे यथा॥

(शां०, अ० २०५, श्लोक १२)

जब मन में होनेवाला पिछला सारा ध्यान निर्गुण हो जाता है, तभी कसौटी पर स्वर्ण-रेखा के समान ब्रह्म की झलक मिलती है।

३०

पिंगला कुररः सर्पः सारङ्गान्वेषणं वने।
इषुकारः कुमारी च षडेते गुरवो मम॥

(शां०, अ० १७८, श्लोक ७)

पिंगला, कुरर पक्षी, सर्प, वन में पपीहे की जीवन-वृत्ति, बाण बनाने वाला और कुमारी कन्या––ये छः मेरे गुरु है।

३१

आशा बलवती राजन् नैराश्यं परमं सुखम्।
आशां निराशां कृत्वा तु सुखं स्वपिति पिंगला।।
सामिषं कुररं दृष्ट्वा वध्यमानं निरामिषैः।
आमिषस्य परित्यागात् कुररः सुखमेधते।।

(शां०, अ० १७८, श्लोक ८)

हे राजन्, आशा बडी प्रबल है। वह सबको दु ख देती है। निराशा ही परम सुख है। आशा को निराशा के रूप में परिणत करके पिंगला वेश्या सुखपूर्वक सोती है। (पिगला आशा के त्याग का उपदेश देने के कारण गुरु हुई।)

चोंच में मांस का टुकडा लिये उडते हुए कुरर को देखकर, दूसरे पक्षी उसे मारने लगे। तब उसने मांस के टुकडे को छोड दिया, फलतः पक्षियों ने उसका पीछा छोड दिया।

३२

गृहारम्भो हि दुःखाय न सुखाय कदाचन।
सर्पः परकृतं वेश्म, प्रविश्य सुखमेधते।।
सुखं जीवन्ति मुनयो भैक्ष्यवृत्तिं समाश्रिताः।
अद्रोहेणैव भूतानां सारङ्गा इव पक्षिणः।।

(शां०, अ० १७८, श्लोक १०)

घर बनाने की खटपट करना दुःख ही है। देखो, सांप दूसरों के बनाये हुए बिल में प्रवेश करके सुख से रहता है।

जिस प्रकार पपीहा पक्षी किसी भी प्राणी से वैर न करके याचना-वृत्ति से अपना निर्वाह करता है, उसी प्रकार मुनिजन भी भिक्षा-वृत्ति का आश्रय लेकर सुख से जीवन व्यतीत करते हैं।

३३

इषुकारो नरः कश्चिदिषावासक्तमानसः।
समीपेनापि गच्छन्तं राजानं नावबुद्धवान्॥
बहूनां कलहो नित्यं द्वयोः संकथनं ध्रुवम्।
एकाकी विचरिष्यामि कुमारीशंखको यथा॥

(शां०, अ० १७८, श्लोक १२)

एक बार एक बाण बनानेवाला अपने काम मे ऐसा दत्तचित्त था कि पास से निकलती हुई राजा की सवारी की ओर भी उसका ध्यान नहीं गया।

बहुत मनुष्य एक साथ रहें तो उनमें प्रतिदिन कलह होता है और दो रहें तो भी उनमें बातचीत तो अवश्य होती ही है। अतः मैं कुमारी कन्या के हाथ में पडी शख की एक-एक चूड़ी के समान अकेला ही विचरूगा।

३४

यथा यथा मनस्तस्य दुष्कृतं कर्म गर्हते।
तथा तथा शरीरं तु तेनाधर्मेण मुच्यते॥

(अनु०, अ० ११२, श्लोक ५)

मनुष्य का मन ज्यों-ज्यों पाप-कर्म की निन्दा करता है, त्यों-त्यो उसका शरीर उस अधर्म के बन्धन से मुक्त होता जाता है।

३५

यदि वा व्याहरेत राजन् विप्राणां धर्मवादिनाम्।
ततोऽधर्मकृतान् क्षिप्रसपवादात् प्रमुच्यते॥

(अनु०, अ० ११२, श्लोक ६)

राजन्, यदि पापी पुरुष धर्मज्ञ ब्राह्मणों से अपना पाप बता दे, तो वह उस पाप के कारण होनेवाली निन्दा से शीघ्र ही छुटकारा पा जाता है।

३६

यथा यथा नरः सम्यक् अधर्ममनुभाषते।
समाहितेन मनसा विमुच्येत तथा तथा।
भुजङ्ग इव निर्मोकात् पूर्वमुक्ताज्जरान्वितात्।।
(अनु०, अ० ११२, श्लोक ७)

मनुष्य अपने मन को स्थिर करके जैसे-जैसे अपना पाप प्रकट करता है, वैसे-वैसे वह मुक्त होता जाता है। ठीक उसी तरह, जैसे सर्प पूर्व-मुक्त, जराजीर्ण केंचुल से छूट जाता है।

: १८ :

प्रकीर्णक

१

गुरुप्रधानो धर्मेषु स्वयमर्थानवेक्षिता।
धर्मप्रधानो लाभेषु स चिरं सुखमश्नुते।।
(शां०, अ० ९२, श्लोक १९)

जो व्यक्ति धर्मानुष्ठान के लिए गुरु को प्रधानता देता है अर्थात् उसके कथनानुसार चलता है, धन-सम्पत्ति की देख-रेख स्वयं करता है, तथा लाभों में धर्म को प्रधानता देता है, अर्थात् उसे सर्वोत्तम लाभ समझता है, वह सदा सुख प्राप्त करता है।

२

लोष्ठमर्दी तृणच्छेदी नखखादी च यो नरः।
नित्योच्छिष्टः संकुसुको नेहायुर्विन्दते महत्॥

(अनु०, अ० १०४, श्लोक १५)

जो ढेले फोड़ने, तिनके तोड़ने, नख चबाने आदि व्यर्थ के कार्यो में लगा रहता है, सदा उच्छिष्ट अर्थात् अपवित्र रहता है तथा चंचल है, ऐसा अशुभ लक्षणोंवाला मनुष्य दीर्घायु नही होता।

३

नृपेणाहूयमानस्य यत्तिष्ठति भयं हृदि।
न तत्तिष्ठति तुष्टानां, वने मूलफलाशिनाम्॥

(शां०, अ० १११, श्लोक ३१)

राजा के द्वारा बुलाये जाने पर मन में जो भय उत्पन्न होता है, वह वन में फल-मूल खाकर रहनेवाले सन्तोषी को नही होता।

४

याच्यमाहुरनीशस्य अभिहारं च भारत।
उद्वेजयन्ति याचन्ति सदा भूतानि दस्युवत्॥

(अनु०, अ० ६०, श्लोक ४)

हे भारत, जो व्यक्ति जिस वस्तु को नहीं दे सकता, उससे उस वस्तु की याचना करना एक प्रकार का आक्रमण है। मांगनेवाले लुटेरों के समान दूसरों को तंग करते रहते हैं।

५

म्रियन्ते याचमाना वै न जातु म्रियते ददत्।
ददत् संजीवयत्येनमात्मानं च युधिष्ठिर॥

(अनु०, अ० ६०, श्लोक ५)

हे युधिष्ठिर, मांगनेवाला मर जाता है, देनेवाला कभी नहीं मरता। देनेवाला मांगनेवाले को तथा अपने-आप को जीवित रखता है।

६

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न दृश्यते।
काष्ठान्यपि हि जीर्यन्ते दरिद्राणां च सर्वशः।।

(शां०, अ० २८, श्लोक २८)

प्राय: देखा गया है कि धनवानों मे खाने या भोग करने की शक्ति नहीं होती। दूसरी ओर दरिद्रों को काष्ठ भी पच जाता है।

७

महान् वृक्षो जायते वर्द्धते च
तं चैव भूतानि समाश्रयंति।
यदा वृक्षश्छिद्यते दह्यते च
तदाश्रया अनिकेता भवन्ति।।

(शां०, अ० ९१, श्लोक २६)

महान् वृक्ष उत्पन्न होता है और बढ़ता है, अनेक प्राणी उसके आश्रय में रहने लगते हैं; किन्तु वही वृक्ष जब कट जाता है या जल जाता है तो उसके सहारे जीनेवाले आश्रयहीन हो जाते हैं।

८

मद्यमांसपरस्वानि तथा दारा धनानि च।
आहरेद् रागवशगस्तथा शास्त्रं प्रदर्शयेत्।।

(शां०, अ० ८८, श्लोक २२)

मानव वासना के अधीन होकर मद्य, मांस एवं परदारा का सेवन करता है तथा दूसरे के स्वत्व का अपहरण करता है। साथ ही अपने दुष्कर्मों का समर्थन करने के लिए शास्त्रों के प्रमाण देता है।

९

आपत्काले हि संन्यासः कर्तव्य इति शिष्यते।
जरयाऽभिपरीतेन शत्रुभिर्व्यसितेन वा।।

(शां०, अ० १०, श्लोक १७)

मनुष्य को आपत्ति के समय ही संन्यास लेना चाहिए, ऐसा कहा गया है; या जिस समय बुढ़ापा आ जाय या शत्रु घेर ले, तब ऐसा करना चाहिए।

१०

क्रोधहर्षावनादृत्य पैशुन्यं च विशेष ।
विप्रो वेदानधीते यः स त्यागी पार्थ उच्यते।।

(शांति०, अ० १२, श्लोक ११)

क्रोध, हर्ष तथा विशेष रूप से पैशुन्य, अर्थात् चुगलखोरी, या कपट को छोड़कर, जो ब्राह्मण वेदों का अध्ययन करता है, वह त्यागी कहा जाता है।

११

अनवेक्ष्य सुखादानं तथैवोर्ध्वं प्रतिष्ठितः।
आत्मत्यागी महाराज स त्यागी तामसो मतः।।

(शां०, अ० १२, श्लोक ९)

जो व्यक्ति जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक सुख-साधनों के उपार्जन की उपेक्षा करके संन्यास की ओर बढ़ता है, वह तामसिक त्यागी माना जाता है।

१२

षडेतान् पुरुषो जह्याद् भिन्नां नावमिवार्णवे।
अप्रवक्तारमाचार्यं अनधीयानमृत्विजम् ।।
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम् ।।

(शां०, अ० ५७, श्लोक ४४-४५)

नीचे लिखे छः व्यक्तियो को समुद्र मे टूटी हुई नाव के समान छोड़ दे— उपदेश न देनेवाला आचार्य, अपठित ब्राह्मण, रक्षा न करनेवाला राजा, अप्रिय बोलनेवाली पत्नी, ग्राम में रहने की इच्छा करनेवाला ग्वाला और वन में जाने की इच्छा करनेवाला नाई।

१३

यथा दारुमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
ब्राह्मणश्चानधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ।।

(शां०, अ० ३६, श्लोक ४६)

लकड़ी का हाथी, चमडे का हरिण और अपठित ब्राह्मण—ये तीनों केवल नामधारी होते है।

१४

अपध्यानमलो धर्मो मलोऽर्थस्य निगूहनम्।
संप्रमोदमलः कामो भूयः स्वगुणवर्जितः ।।

(शां०, अ० १२३, श्लोक १०)

धर्म का मल है अपध्यान अर्थात् दुश्चिन्ता, अर्थ का मल है संगोपन, और काम का मल है उच्छृखल वासना।

१५

ये च मूढतमा लोके ये च बुद्धेः परंगताः।
त एव सुखमेधन्ते मध्यमः क्लिश्यते जनः।।

(शां०, अ० २५, श्लोक २८)

जो अत्यन्त मूढ़ है या अत्यन्त बुद्धिमान हैं, वे ही सुख प्राप्त करते हैं। मध्यवर्ती मनुष्य क्लेश प्राप्त करता है।

१६

भवत्यधर्मो धर्मो हि देशकालः स तादृशः।
कारणाद् देशकालस्य धर्माधर्माविुभावपि।।

(शां०, अ० ७८, श्लोक ३२)

कहीं पर अधर्म भी धर्म हो जाता है और कही धर्म भी अधर्म। धर्म और अधर्म दोनों का निर्णय देश तथा काल के अनुसार होता है।

१७

द्विविधो जायते व्याधिः शारीरो मानसस्तथा।
परस्परं तयोर्जन्म निर्द्वन्द्वं नोपलभ्यते।।

(शां०, अ० १६, श्लोक ८)

रोग दो प्रकार के होते है, शारीरिक तथा मानस। दोनों का जन्म एक-दूसरे से होता है। कोई रोग अकेला नहीं होता।

१८

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः।
एतद्विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात्।।

(शां०, अ० २०५, श्लोक ३)